द्वितीय अध्याय

महिला लेखिकाओं की आत्मकथा का परिचय ।

2.1 स्फुरना देवी – अबलाओं का इंसाफ (1927) ।

2.2 प्रतिभा अग्रवाल - दस्तक जिन्दगी की (1990) ।

2.3 कुसुम अंसल - जो कहा नहीं गया (1996) ।

2.4 कृष्णा अग्निहोत्री - लगता नहीं है दिल मेरा (1997) ।

2.5 कौशल्या बैसंती - दोहरा अभिशाप (1999) ।

2.6 शीला झुनझुनवाला - कुछ कही कुछ अनकही (2000) ।

2.7 मैत्रेयी पुष्पा - कस्तूरी कुण्डल बसै (2002) ।

2.8 बेबी हालदार - आलो-आँधरि (2002) ।

2.9 रमणिका गुप्ता – हादसे (2005) ।

2.10 मन्नू भंडारी - एक कहानी यह भी (2007) ।

2.11 प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या (2007) ।

2.12 चन्द्रकिरण सोनरेक्सा - पिंजरे की मैना (2008) ।

2.13 रमणिका गुप्ता - आपहुदरी (2015) ।

निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय

लेखिकाओं के आत्मकथाओं का परिचय

2.1 स्फुरना देवी-अबलाओं का इंसाफ-1927

'अबलाओं का इंसाफ' की आत्मकथा श्रीमती स्फुरना देवी की सन् 1927 में चाँद कार्यालय इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। इसमें लेखिका के मनोद्गारों को एक सहृदय महाशय ने लेखबद्ध करने तथा उन्हें 'चांद' मासिक पत्र में प्रकाशित करवाने में सहायता की। आज से नौ दशक पूर्व प्रकाशित इस कृति का उल्लेख हिन्दी साहित्य में नहीं मिलता है। यह बहुत आश्चर्यजनक बात है। इस आत्मकथा की जानकारी हुई और उन्होंने इस आत्मकथा का संपादन किया। यह कृति बहुत ही यादपूर्ण है। इस आत्मकथा में नैया को अपने शोध के दौरान जानकारी हुई। इसीलिए इस आत्मकथा में उन्होंने लिखा है - ''स्फुरना की यह आत्मकथा कैसे उपेक्षित और अलक्षित रह गई, यह विस्मय की बात है। जबकि 1927 में ही महादेवी वर्मा का हिन्दी साहित्य में पदार्पण हो चुका था। इस आत्मकथा से गुजरते हुए रह-रहकर लगता रहा कि स्त्री विमर्श के नाम पर जिस स्त्री मुक्ति की बात पिछले कुछ वर्षों से कही जा रही है, उसका बिगुल वास्तव में नौ दशक पूर्व बज चुका था, जिसका उदाहरण है यह आत्मकथा। मेरा मानना है कि भाषा, शिल्प और इसके

माध्यम से उठाए गए उस दौर के स्त्री प्रश्नों के आलोक में 'अबलाओं का इंसाफ' (1927) पहली आधुनिक स्त्री आत्मकथा कही जा सकती है[66]।''

'अबलाओं का इंसाफ' में श्रीमती स्फुरना देवी की आत्मकथा में उच्चकुल की विधवा स्त्रियों के आख्यान हैं। इस आत्मकथा में लेखिका ने वैश्य समुदाय की तथा ब्राह्मण समाज की विधवा स्त्रियों के बयानों के माध्यम से उनकी व्यथा को अभिव्यक्त कर दिया है। लेखिका ने न्याय के लिए ईश्वर के न्यायाधीश धर्मराज के भवन की कल्पना कर कृति को रुचिपूर्ण बनाया है। वह स्वयं बताती है - ''पुरुषों के और हमारे झगड़े का इंसाफ लौकिक अदालत में नहीं हो सकता हमारा इंसाफ तो परमात्मा के घर की उस अदालत में होगा, जहाँ किसी का पक्षपात नहीं चल सकता, किसी गवाही साक्षी की जरूरत नहीं, जिससे कोई किसी बात को छिपा नहीं सकता और जहाँ अपनी-अपनी करनी का फल सबको तोलकर मिलता है वह है ईश्वर के न्यायधीश धर्मराज का भवन। अतएव इस अभियोग का निर्णय स्थल वैवस्वत् धर्मराज की अदालत है[67]।''

यह बहुत ही बड़ी विडंबना की बात है कि आज से नौ दशक पूर्व प्रकाशित इस कृति का उल्लेख हिन्दी साहित्य में नहीं मिलता है। इस आत्मकथा में लेखिका ने वैश्य समुदाय की विधवाएं राधा कृष्णा और कमला की व्यथा को तथा ब्राह्मण

---

[66] नैया, शोध प्रबंध, पृ0 7

[67] अबलाओं का इंसाफ, स्फूरना देवी, पृ0 35

समाज की विषया स्त्रियों के बयानों के माध्यम से उनकी व्यथा को अभिव्यक्त किया है। इस समाज में स्त्रियों की स्थिति चिंता व्यक्त करते हुए नैया जी लिखती है - ''आत्मकथा की लेखिका ने मनुस्मृति की और कटु आलोचना 'अबलाओं का इंसाफ में की है। इसको पढ़ते हुए पंडिता रमाबाई के (दा हिंदूवी हिंदू स्त्री का जीवन), ताराबाई शिंदे की 'स्त्री-पुरुष तुलना' तथा एक हिंदू औरत की 'सीमंतनी उपदेश' की स्मृति बरबस ताजा हो उठती है। इस बालविवाह विधवाविवाह व नियोग के पक्ष में दिए गए सुधीतर्क इस कृति को अविस्मरणीय बना देते हैं[68]। हमारे समाज में महिलाओं का बहुत अधिक शोषण किया जा रहा है। यह शोषण बहुत प्राचीन समय से ही चलता आ रहा है। लेकिन पुरूष को तो अपने ही ऐश्वर्य और आराम की चिंता है। अन्य किसी का शोषण हो तो होता रहे, इससे समाज में पुरूष को क्या लेना देना है। इस कारण नारी बनती नहीं है बल्कि समाज के द्वारा बनाई जाती है। एक अज्ञात एक हिंदू की किताब 'सीमंतनी' उपदेश सन् 1582 में ऊंची थी। इस पुस्तक की लेखिका का नाम है। इसे मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने सर्वप्रथम प्रकाशित करवाया था लुधियाना के ऋषिराम ने देवनागरी में इसकी स्क्रिप्ट तैयार की थी। सीमंतनी उपदेश की लेखिका एक अज्ञात हिंदू औरत परमात्मा के आगे अपनी दीन-हीन दशा के लिए कुछ इस प्रकार से फरियाद करती है - ''हे जगत पिता, क्या तूने हमको पैदा नहीं किया?

[68] अबलाओं का इंसाफ, स्फूरना देवी, पृ0 22

क्या हमारा पैदा करने वाला कोई और खुदा है? लोगों ने तेरा नाम रहीम करार दिया, इसलिए तू भी हिंदियों का राम बन गया है। अगर तुझको हमारी यही हालत मंजूर थी तो हमारी पैदाइश किसी और तरह से करता जिससे हमको भी तसल्ली होती और मजलूमों की फरियाद तो दुनिया की अदालत में भी सुनी जाती है, क्या तूने हम मजलूमों के लश्कर को देखकर अपनी अदालत का दरवाजा बंद कर लिया है[69]?'' पुरुष समाज स्त्री लेखन पर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता है, इसलिए उसके लेखन को नकारता है जबकि रचना की उत्कृष्टता को महत्त्व देना चाहिए, ना कि लेखन किसके द्वारा किया गया है। डॉ. सुमन राजे स्वयं लिखती है कि - ''इक्कीसवीं सदी तक आते-आते महिला लेखन की बात करना न चौकाने का कारण है न उपेक्षा का। मूलरूप में रचना, रचना होती है, उसे स्त्री या पुरुष रचना के रूप में नहीं देखा जा सकता; नहीं देखा जाना चाहिए[70]।'' इस समाज में स्त्रियों के प्रति पुरूष की सोच आज भी घिसी-पिटी है। पुरूष लेखक को यह भय है कि यदि दोयम दर्जे की स्त्रियों को यदि कुछ कहने लिखने का मौका दिया जाएगा तो यह हमारी रहस्यमयी बातों का खुलासा समाज में कर देंगी, जिससे पुरूष समाज की छवि बिगड़ेगी। पुरूष लेखकों की इस सोच ने भी स्त्री लेखन पर कुठाराघात किया है, जिस कारण कुछ लेखिकाओं की आत्मकथाओं को हिन्दी साहित्य में स्थान नहीं मिला। इस पुरूष समाज के प्रति वह महिलाएं जागरूक

[69]अबलाओं का इंसाफ, स्फूरना देवी, पृ0 37

[70] अबलाओं का इंसाफ, स्फूरना देवी, पृ0 19

होकर विरोध नहीं करती। अब इस समाज में पुरूष और स्त्री की भी समानता होनी चाहिए। पर इस समाज में महिला पुरूष से दीन ही मानी जाती रही है । इसलिए अब महिलाएं अपनी आत्मकथाओं के द्वारा अपने भावों को समाज में प्रकट कर रही हैं। इस पुरूष समाज की सही तस्वीर पेश करती है। इसी कारण आज महिलाएं भी अपने अधिकारों और जरूरतों के प्रति सचेत रही है। इस तरह पुरूष लेखकों के प्रभुत्व के कारण उनका लेखन अधिक है अपेक्षाकृत महिला के। साहित्यिक क्षेत्र में पुरूष के दोगलेपन की नीति पर उन महिलाओं ने लिखा है जिनके लिये लिखना एक आम बात है | इसमें स्त्री पुरूष दोनों समान है। इनको स्त्री पुरूष के खांचों में बांटना भी रूढ़िबद्धता ही नजर आती है। जिस तरह एक पुरूष लिख सकता है। उसी तरह एक महिला भी अपने विचारों और चेतना को अभिव्यक्त कर सकती है। स्त्री लेखक द्वारा लिखा गया लेखन उसके विशिष्ट स्वानुभावों और आत्मचेतना की अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत कृति 'अबलाओं का इंसाफ' में स्फुरना देवी ने अपनी आत्मकथा के दो मार्मिक प्रसंगो का उल्लेख किया है। लेखिका की पुत्री कैंडी की जलने से हुई मृत्यु और ओमप्रकाश द्वारा किया गया विश्वासघात उसके लिये और भी घातक था। यह आत्मकथा हृदयस्पर्शी और रोचक है तथा इसमें पाठक को बाँधने की क्षमता है। लेखिका मे अपने जीवन के पूरे दुःखदर्द को अपना आत्मीय रानी के साथ जिस सहज भाव से अंकित किया है वह प्रशंसनीय है।

स्त्री लेखन के संदर्भ में कहीं पर भी महिलाओं का लिखना अपने प्रेम भावों को अभिव्यक्त करना नहीं रहा है, बल्कि इस समाज में महिला के साथ जो हमेशा ही अस्मिता का संघर्ष और सामाजिक व्यवस्था में आए हुए हिस्से में दी जाने वाली वे अवमाननाएं, उत्पीड़न, अमानुषिक परिस्थितियाँ, उनके श्रम के अंतहीन सिलसिले जेसी तमाम सच्चाइयों को समझना और समझाना भी था। निष्कर्ष यह कि इस समाज में नारी के साथ जो भी हो रहा होता है, पुरूष ही उसका हिस्सेदार होता है क्योंकि समाज में सब समस्याओं को इतना सही ढंग से दर्शाया गया है। इस समाज में नारी के माध्यम से ही नारी का शोषण करवाया जाता है। नारी को ही नारी का दुश्मन बना दिया जाता है। जैसे सास, नन्द, बहु इत्यादि रूप इनके द्वारा एक नारी दूसरी नारी को नीचा दिखाकर दुखी करना ही नारी अपना लक्ष्य बना लेती है। इस कारण नारी को नहीं पता की इस पुरूष समाज के कारण ही वह अपनी जिम्मेदारियों के साथ-साथ किसी न किसी नारी का भी शोषण कर रही होती है।

2.2 **प्रतिभा अग्रवाल-दस्तक जिंदगी की** -1990

प्रतिभा अग्रवाल की अपनी आत्मकथा दस्तक जिन्दगी की है। यह भारतेंदु परिवार से सम्बद्ध प्रतिभा अग्रवाल की आत्मकथा दो भागों में दस्तक जिंदगी की (1990 ई०) और मोड़ जिंदगी का (1996 ई०) प्रकाशित हुई। प्रतिभा जी का जन्म 1930 को बनारस हुआ था। इनके दादा बाबू राधाकृष्ण दास भारतेंदु जी के सगे फुफेरे

भाई थे। लेखिका ने दस्तक जिन्दगी की में बनारस में मायके की यादों से लेकर मदन बाबू के साथ ब्याह होकर कलकता आने तक का वर्णन किया गया है। इनके भाई भारतेंदु जी की मृत्यु के समय लेखिका के दादा जी बीस वर्ष के युवा थे। प्रतिभाशाली भारतेंदु जी के संसर्ग से दादा जी ने साहित्य क्षेत्र में बहुत कुछ अर्जित किया। दादा जी ने भारतेंदु जी के अधूरे नाटक को पूरा किया। प्रतिभा अग्रवाल के दादा जी ने नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। वह नागरी प्रचारिणी सभा के प्रथम अध्यक्ष सन् 1893 में बने दादा जी की मृत्यु यो समय उनके बेटे बाबू बालकृष्ण दास (प्रतिभा जी के पिता) की उम्र कुल ग्यारह साल की थी। दादा जी के पर धन-धान्य से परिपूर्ण था, लेकिन प्रतिभा अग्रवाल के पिता बाबू बालकृष्ण दास उस समृद्धि की रक्षा नहीं कर सके। अब प्रतिभा की माता जी यक्ष्मा की मरीज थी। अपनी माता जी की सेवा सुश्रूषा का कार्य नन्हीं बच्ची प्रतिभा पर था। इनकी माता जी का इलाज देर से शुरू होने के कारण डॉक्टर उन्हें नहीं बचा सके। दस वर्ष की बिन माँ की बच्ची को दादी जी ने पाला। लेखिका के बड़े भाई गोपाल कृष्णदास, श्याम कृष्णदास तथा बड़ी बहिन प्रियवंदा देवी जी ने काफी स्नेह दिया। वह कहती है - ‘‘कि सन् 1949 के अक्टूबर महीने में सत्रह दिन के अन्दर दोनों भाई चले गये, एक की उम्र अट्ठाईस, दूसरे की तेईस[71]।’’ प्रतिभा जी को संगीत और नाटक में बचपन से ही रुचि थी। वह यह सब नाटक की रूचि का श्रेय अपने पिता जी को देती है।

[71] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 4

प्रतिभा अग्रवाल की रूचि के ही अपने पिता जी के साथ संगीत सम्मेलनों में प्रतिभाग करती थी। अब लेखिका संगीत गोष्ठी में फैयाज खा साहब का गाना सुनकर प्रभावित हुई और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह अविवाहित रहकर एक श्रेष्ठ गायिका बनेंगी। अब उसके परिवार वालों ने समझाकर भावावेश में ली गई प्रतिज्ञा को तुड़वाया। वह अपने विषय में स्वयं बताती है कि - ''श्रेष्ठ गायिका तो नहीं बन पायी क्योंकि उसके लिए समुचित समय नहीं दिया पर हाँ विवाह के पहले थोड़ा बहुत गाना सीखा ही, सितार भी सीखा[72]।'' आगे उसकी की मुलाकात एक साहित्यिक गोष्ठी में मदन बाबू से होती है। तेरह वर्ष की बालिका मदन बाबू से विवाह करने का सपना बुनने लगी। वह इस विषय में प्रतिभा ने लिखा है - ''मदन जी अच्छे लगते थे। शायद मन में कहीं यह भी ख्याल आया था कि इनसे विवाह हो जाये तो बड़ा अच्छा हो उस समय यह सोचना बचपना था, आकाश कुसुम को पाने की कामना जैसा था किन्तु कालांतर में वह आकाश भी हाथ लगा, मेरा सौभाग्य बहुत बड़ा सिद्ध हुआ[73]।'' प्रतिभा अग्रवाल जी की पिता की मृत्यु लिवर कैंसर से हुई। पिता की मृत्यु के पाँचवे दिन लेखिका को नाट्य प्रदर्शन के लिए दिल्ली जाना था। उनके नाट्य प्रेम की धुन उन्हें दिल्ली ले आती है। अब वह अपने पिता के दशकर्म विधान से एक दिन पहले बनारस पहुँचती है। अब स्वयं लिखा है कि - ''पता नहीं, किसने क्या सोचा क्या कहा मेरे मन में कोई दुविधा

[72] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 29

[73] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 34

नहीं थी और आत्मा नाम की वस्तु कहीं रहती है तो बाबूजी की आत्मा मेरे इस आचरण से अवश्य ही तुष्ट हुई होगी[74]।'' इनके पति मदन बाबू सुधारवादी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वह लेखिका से वयः में बारह वर्ष बड़े थे। लेखिका अपने पति के विचारों से प्रभावित थीं। वह कहती हैं कि - ''वे दिल से सुधारवादी थे, स्त्री-पुरुष की समानता के हिमायती और इसे उन्होंने व्यवहार में उतारा। बिन दहेज के बिना पर्दे के विवाह किया, अपने घरवालों की अनिच्छा के बावजूद अपनी मर्जी से अपनी पसंद की लड़की से विवाह किया, विवाह के पंद्रह दिनों के बाद ही उसे स्कूल में भर्ती कराया, अगले साल पढ़ने के लिए शांति निकेतन भेज दिया, बाद में अभिनय करने के लिए हर तरह अनुकूल वातावरण बनाया, उसे लोगों से मिलने-जुलने की पूरी स्वतंत्रता दी[75]।''

सन् 1945-50 के वर्षों में पत्नी को शिक्षित करने का प्रयास काफी सहरानीय था। आत्मकथा का दूसरा खंड 'मोड़ जिंदगी का' में प्रतिभा जी नाटक एवं रंगमचं से संबंधित यादों का खुलासा करती है। मदन बाबू ने सुहागरात के दिन नवपरिणीता को अपनी प्रेमिका के पत्र दिखाये। उन्होंने अपनी पत्नी से कुछ भी नहीं छिपाया लेखिका अपने पति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहती हैं कि - "उन्होंने जिस मानसिक संतुलन का परिचय दिया, भेरी शिक्षा-दीक्षा, अभिनय आदि प्रवृत्तियों

[74] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 55

[75] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 76

को जैसा प्रोत्साहन दिया, मेरी व्यक्तिगत स्वाधीनता का जैसा आदर किया वह उस व्यक्ति की ईमानदारी का परिचायक थी[76]। लेखिका स्वयं स्वीकार करते हुए कहती है कि - ''प्रारंभिक वर्षों में झगड़े का कारण अधिकतर में होती थी मेरा नाटक आदि करना, पुरुषों के साथ मेरी मैंत्री आदि न चाहते हुए भी कभी दंभ व्यक्त होता रहा होगा या मदन जी को लगता रहा होगा कि मैं दंभी हो गयी हूँ[77]।'' मदन बाबू के मित्र लेखिका की प्रगति का पूरा श्रेय उनके पति को देते हैं जिसे सुनकर यह विचलित हो उठती है। वह कहती रहती है कि - ''वे यह भूल जाते हैं कि सुविधाएँ रास्ता सुगम बनाती है, पर यदि व्यक्ति में अपनी क्षमता न हो तो वह कहीं आगे बढ़ सकता है और फिर क्या यह सत्य नहीं कि कर्मठ व्यक्ति अपने लिए रास्ता बना लिया करते हैं[78]।'' प्रतिभा अग्रवाल ने अपने पिता जी के मुहावरे संग्रह के अधूरे कार्य को आगे बढ़ाया और मुहावरों पर उच्च स्तरीय शोध कार्य किया। उन्होंने डी.फिल. और डी.लिट् की उपाधियाँ प्राप्त कर मुहावरा कोश का संपादन किया। अब वह अपने शोध कार्य के लिए अपने पिता को श्रेय देती है और कहती है कि - ''इसमें संदेह नहीं कि बाबूजी यदि वह संग्रह न छोड़ जाते तो मुहावरों के क्षेत्र में काम करने की प्रेरणा मुझे कभी न मिलती[79]। प्रतिभा अग्रवाल जी के पति मदन बाबू उदार और आधुनिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वह

---

[76] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 33
[77] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 87
[78] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 45
[79] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 79

धार्मिक भेदभाव का विद्रोह करते थे। स्वयं लेखिका अपने पति की स्वभावगत विशेषताओं का खुलासा करती है कि - ''घर की कहर धार्मिकता, संकीर्णता आदि के प्रति एक प्रकार का विद्रोह भी उनके मन में रहता था''।

घर वाले दूसरी जाति वालों विशेषकर मुसलमानों के हाथ का खाने को मना करते थे, तो जरूर खाना था, उसके लिए चौदह-पंद्रह वर्ष की उम्र में ही साइकिल पर पीछे बैठकर दस-दस मील दूर मुसलमान दोस्त के घर जाते थे। परायी स्त्रियों से मिलना जुलना, उनसे दोस्ती करना आदि तो बदचलनी थी ही, अतः मदन जी यह सब मुक्त मन से करते थे। घर के सदस्यों की ये बातें, ये मान्यताएँ, ये प्रतिबंध उन्हें असार लगते थे, खोखले लगते थे और वे उन बंधनों से मुक्त होकर अधिक स्वस्थ और उन्मुक्त जीवनयापन करना चाहते थे[80]।'' अब वह अपने घर परिवार के बारे में स्वयं कहती रहती है कि - ''आगामी वर्षों में (जीवन एक साथ तीन-तीन, चार-चार स्तरों पर चला | घर गृहस्थी, बाल-बच्चे, पढ़ाई-लिखाई, नाटक, थियेटर, फिर अध्यापन आदि घर गृहस्थी तो सब दिन रही। हम दो से तीन और फिर चार हुए। फिर बेटियों के विवाह के कारण पहले तीन फिर दो और पिछले सोलह वर्षों से एक हैं, पर गृहस्थी तो पूरी चलती है, और सदा चली[81]''। अभिनय के संबंध में बंगाल के सुप्रसिद्ध निर्देशक एवं अभिनेता शंभु मित्र के अभिनय

[80] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 69

[81] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 57

सिद्धांत को प्रतिभा जी ने माना है। उनका कहना है कि - ''अभिनय धोखा है जो जितना अच्छा धोखा दे सकता है वह उतना बड़ा कलाकार होता है। अर्थात् आप जो नहीं है, जितनी सफलतापूर्वक रूपायित कर सकते हैं, राम न होते हुए भी राम होने का जितना सफल भान करा सकते हैं, आपका अभिनेता उतना ही सफल माना जायेगा। आप तल्लीन हो या न हों, आप तल्लीन होने का भान करायें, यह आवश्यक है[82]।'' नाटक एवं रंगमच के लिए समर्पित जीवन जीने वाली लेखिका ने अपनी आत्मकथाओं में व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःखमय मर्म क्षणों का अपने साहित्य में व्यक्त किया हैं। मदन बाबू लेखिका के प्रति साहित्य, नाटक एवं सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

लेखिका ने अपनी आत्मकथा के दूसरे भाग 'मोड़ जिंदगी का' की भूमिका में लिखती है कि - ''मदन जी जब तक थे तब तक फ्रेंड, फिलॉसफर, गाइड सबका काम वह करते थे, मुझे किसी और पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं थी। उनके जाने के बाद कोई एक व्यक्ति सब भूमिका नहीं निभा सकता था, मुझे बहुतों के सहारे की जरूरत महसूस हुई। मेरे अपने दोस्त तो मेरा सुख-दुःख बाँटने को थे ही, मदन जी के मित्र भी मेरे निकट आये, उन्होंने भी अपनी मित्र-पत्नी के सुख-

[82] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 41

दुःख में साझेदारी करनी चाही। मैंने एक को खोया अवश्य पर बदले में अनेक को पाया[83]।''

डॉ० सरजू प्रसाद मिश्र का कहना है कि - ''डॉ० प्रतिभा अग्रवाल की आत्मकथा (दोनों खंड मिलाकर) उनके बचपन, घर परिवार से संबंधित सुखद दुःखद अनुभवों का लेखा-जोखा ही नहीं प्रस्तुत करती अपितु एक नारी के आत्मविश्वास पूर्ण अभ्युदय एवं उत्थान की गाथा भी कहती है। बंगला भाषा सीखकर उस पर अधिकार प्राप्त कर बंगला नाटकों के हिन्दी अनुवाद के द्वारा उन्होंने हिन्दी के नाट्य-साहित्य को सम्पन्न बनाया है। इन अनुवादों के आधार पर ही अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद किए गए। हिन्दी नाटककारों को इन अनुवादों से प्रेरणा प्राप्त हुई, उनका रचनात्मक क्षितिज व्यापक हुआ[84]।''

डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र जी ने बताया कि इनकी आत्मकथा दो भागों में उसका बचपन और पूर्ण जीवन को स्पष्ट किया है। इसकी आत्मकथा में नारी के ही दुःख सुख का चित्रण किया गया है। डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र जी का कहना है कि - ''डॉ. प्रतिभा अग्रवाल की आत्मकथा अपने काल और समाज पर सर्चलाइट डालती है, वह नारी के आत्मविश्वास की सामर्थ्य का बोध कराती है कि वह अबला नहीं सबला है। यह आत्मकथा ही नहीं रंगमंच का इतिहास और नाट्य शास्त्र भी

[83] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 27
[84] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 25

है। यह उनका सौभाग्य है कि अपने नाट्य प्रेम के बल पर उन्होंने नाट्य शोध संस्थान की स्थापना का महत्तर कार्य सम्पन्न किया।'' इस हिन्दी साहित्य की लेखिका (प्रतिभा अग्रवाल) जी के अतुलनीय योगदान को हिन्दी कभी भूला नहीं सकेंगे

2.3 **कुसुम अंसल-जो कहा नहीं गया** -1996

'जो कहा नहीं गया' आत्मकथा कुसुम अंसल ने सन् 1996 में प्रकाशित कराई। कुसुम अंसल ने आमुख में कहा है - ''मेरा यह लेखन मेरी वह यात्रा है जिसमें प्रवाहित होकर मैं लेखिका बनी थी, मेरे उन अनुभवों का कच्चा चिट्ठा जिनको अपने प्रति सचेत होकर मैंने रचनात्मक क्षणों में जीवन जिया था[85]।'' कुसुम जी की मां उनके दस महीने के बाद माँ की मृत्यु हो गई थी। सौतेली माता ने नन्ही बच्ची पर बहुत अत्याचार किए। कुसुम की बुआ की कोई संतान न होने के कारण दस वर्ष की बच्ची को बुआ और फूफाजी ने गोद ले लिया। वह उनकी इकलौती पुत्री बन अलीगढ़ से आगरा चली गई। कुसुम को पूरी साहब बहुत ही अधिक प्यार करते थे। उनको पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे। फूफा जी की प्रेरणा से कुसुम में साहित्य के प्रति रुचि बढ़ी और वह कविताएँ लिखने लगी। इस तरह से अंजो दीदी नाटक में उन्हें श्रेष्ठ अभिनय के लिए पुरस्कार मिला। भगवान की असीम कृपा से कुसुम की बुआ विवाह के चौबीस वर्ष बाद गर्भवती हुई और उन्हें पुत्री

[85] दस्तक जिंदगी की, प्रतिभा अग्रवाल, पृ0 107

की प्राप्ति हुई। कुसुम के जैविक पिता ने अपनी बेटी कुसुम को वापस बुला लिया। आगरा से अलीगढ़ पहुंची बिन माँ की पुत्री की स्थिति धोबी के कुत्ते के समान हो गई। कुसुम अब अपने परिवार की तुलना अपनी सहेलियों के परिवार से करती है कि - ''सब लड़कियों की एक माँ है और मेरी तीन, सब लड़कियों के एक पापा हैं पर मेरे दो[86]''। अपने पिता की मर्जीनुसार बेटी को विज्ञान वर्ग की पढ़ाई छोड़कर कला वर्ग में प्रवेश लेना पड़ा। इसके बाद लेखिका कुसुम को अपना जीवन अंधकारमय लगने लगा। वह कहती है कि - ''समृद्धि हर कोने को अपने उजाले से ज्योतित किये थी पर अवश्य ही मुझमें कुछ कमी होगी, तभी तो मेरा परिवेश उससे अछूता रह गया था। मेरे परिवेश में कुछ भी बड़ा या विशाल नहीं था मोटर गाड़ियां, घोड़ा गाड़ी सब होने पर भी अधिकतर पैदल, अकेले स्कूल जाना होता था[87]''। लेखिका की सौतेली माँ उन्हें अपने साथ कहीं ले जाने में शर्मिंदगी महसूस करती थीं। उसकी सौतेली माता का दुर्व्यवहार उन्हें भीतर से तोड़ रहा था। बिना माँ की बच्ची अपने भविष्य के प्रति चिन्तित रहती थी। ''मुझे अपनी चिंता नहीं थी, अपने सपनों की चिंता थी जो हर छोटी-बड़ी घटना के बाद उजाड़ होते जाते रंगविहीन चिथड़ों जैसे[88]''। उसका भाई लंदन से इंजीनियरिंग की पढ़ाई करके आये। लेखिका के बड़े भाई ने उनकी साधारण वेशभूषा देख आत्मसम्मान

[86] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 22

[87] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 104

[88] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 67

के प्रति चेताया था कि -''नहीं ये सादी धोती, रबड़ की चप्पल पहनकर तुम कॉलेज नहीं जा सकती। हमारी फैक्टरी में एक हजार कर्मचारी हैं, वह पहनते हैं ऐसी चप्पलें ऐसी सूती धोतियाँ| तुम उनके मालिक की इकलौती बेटी हो, तुम्हें ये शोभा नहीं देता, जाओ, भीतर जाकर बदलो ये कपड़े[89]।'' अपने भाई की प्रेम भरी फटकार से कुसुम अंसल अपने में बदलाव लाने लगी। अलीगढ़ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान विषय में एम०ए० करने लगी। वह तल्लीनता से पढ़ने लगी और कविता, कहानी, उपन्यास लिखने में जुट गई। वह कॉलेज में बिताये पलों को याद कर कहती है कि - ''उन दिनों यूनिवर्सिटी की क्लास लेक्चर, पढ़ाई ही मेरी मुक्तता थी अतः मैं उन अमूल्य पलों को बहुत संजीदगी से जी रही थी ये ही दो पल थे जो मैंने अपने लिए जिये थे मात्र अपने लिए[90]।''

एक दिन कुसुम अंसल के हाथ 'डायरी ऑफ ऐने फ्रांक' नामक किताब लगी। डायरी की लेखिका एन जर्मनी में नाजियों के जुल्मों का शिकार हुई वहाँ छोटी उम्र के बच्चों को परिवार के साथ एक जेल से दूसरी जेल में डाल दिया जाता था। वह जेल की यातनाओं को सह न सकी और इस संसार से विदा ले ली। ऐने ने अपने जीवन की समस्त घटनाओं को सिलसिलेवार अपनी डायरी में लिखा था। कुसुम नाजी यातनाओं का दर्दनाक विवरण पढ़कर विरक्ति हो गई और उनके

[89] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 98

[90] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 44

मन में अनेक सवाल उठने लगे कि - ‘‘जुल्म उन्हीं को क्यों सहना होता है जो बेकसूर होते हैं[91]?‘‘

लेखिका(कुसुम अंसल) के जीवन में मेधावी छात्र जीवेश बयार बन कर आये और वह कल्पना लोक में उड़ान भरने लगी। एक बार प्रेमी ने पत्र द्वारा पाँच सौ रुपये की मांग की। यह मांग लेखिका को प्रेमी की स्वार्थपरता स्पष्ट दर्शा रही थी - ‘‘कोरा, भावनाविहीन वह पत्र मुझे एक परिहास लगा, मेरी कोमल भावनाओं को चकनाचूर करने वाला एक दस्तावेज”[92]।’’ कुसुम अंसल का प्रेम छू-मंतर हो जाता है कि - ‘‘अनुभव अदृश्य होते हैं, दिखाई भी नहीं पड़ते पर उनके चरण चिह्न मन में खुदे रह जाते हैं हमेशा-हमेशा के लिए[93]।‘‘ लेखिका का विवाह दिल्ली निवासी सुशील अंसल जी से तय हो गया। वह स्वयं लिखती है कि - ‘‘अपने भावी पति के विषय में मेरी जानकारी कुछ भी नहीं थी सब कुछ था रहस्यमय सा, अनजान सा ‘अननोन’ और मैं संकोच के पदों में बंद उस अजनबी को अपना बनाकर ‘द नोन’ जानकर स्वीकारने की स्थितियों में कदम रख रही थी[94]।’’ कुसुम की अपनी ससुराल के रहन-सहन में काफी अन्तर पाया, जिस कारण उन्हे सामंजस्य बिताने में काफी परेशानियों का सामना करने पड़ा। वह स्वयं लिखती

---

[91] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 32

[92] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 90

[93] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 49

[94] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 60

है कि - ‘‘स्थिति से समझौता करके दो नितांत अजनबियों की तरह मैं और सुशील जीवन के इस समुद्र में अपने अपने पोत अपने ढंग से फैला रहे थे। यह यात्रा भी एक मोहभंग के समान थी अनवरत चलती हुई प्रवाहमान[95]।’’ लेखिका की सास रूढ़िवादी प्रवृत्ति की स्त्री थी। कुसुम ने जब मुसलमान सहेलियों को अपने घर पर खाना खिलाया, तब उनकी सास बर्तनों को अशुद्ध मानकर राख से साफ़ करवाते हुए बोलती है कि - ‘‘शुद्ध कर रहे हैं बर्तन, मलेच्छों को खाना खिला दिया तुमने --अशुद्ध हो गया सब कुछ[96]।‘‘ लेखिका अब इस धार्मिक भेदभाव को देखकर अचंभित हो जाती है कि - ‘‘मनुष्य और मनुष्य का विभाजन, प्रेम और घृणा का यह विभाजन, हिन्दू मुसलमान का भेदभाव अलीगढ़ में तो नहीं था[97]।’’

कुसुम अंसल इस भेदभाव के कारण अपनी सास से प्रश्न करने का मन कर जाता है कि - ‘‘मम्मी जी, ऐसा करे आप ये कुछ कोयले मेरे भीतर भी डाल दे, मैं भी तो उनके साथ उनके बर्तनों में खाती पीती[98]।’’

एक दिन फिर से लेखिका की मुलाकात काफी अरसे के बाद अपने पूर्व प्रेमी से होती है और वह पूछे बिना नहीं रह पाती कि - ‘‘जीवेश, तुमने मेरी भावनाओं का सौदा क्यों किया था, प्रेम चाहे किसी भी उम्र का क्यों न हो, एक प्रतिज्ञा है,

---

[95] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 117

[96] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 121-122

[97] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 78

[98] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 102

वायदा, उसे तुमने कुछ रुपयों की खातिर चूर-चूर हो जाने दिया, क्यों[99]?'' अब जीवेश प्रत्युत्तर में अतीत की गोद में सोए रहस्य को खोलते हैं कि - ''मैं चाहता था तुम यही समझो, प्रेम को भ्रम समझकर टूट जाने दो, क्योंकि उस समय का सच यही था कि तुम अलीगढ़ के सबसे बड़े परिवार की एकमात्र बेटी थी जिसकी परछाई तक छूना मेरे वश की बात नहीं थी दूरियों की एक सीमा होती है, परंतु हमारी दूरियाँ बाँटी नहीं जा सकती थी, उस समय उम्र ऐसी थी कि कोई दलील काम नहीं आती, अतः सप्यदैन और मैंने वह नाटक खेला था[100]।'' कुसुम अंसल जीवेश ये सभी बातें सुनकर देखती देखती ही रह जाती है। प्रेमी की परिपक्वता, सत्यनिष्ठता से भाव-विभोर हो जाती है। सुशील अंसल (पति) पर अपनी कंपनी को आगे बढ़ाने के साथ-साथ अपने छोटे भाईयों की भी जिम्मेदारी थी। कुसुम अंसल पति के व्यस्त जीवन से त्रस्त होने लगी। उनके सारे सपने चूर -चूर होने लगे। स्वयं वह कहती है कि - ''मेरे वह सुनहरे दिन मेरे सैन्सिटिव मन में, जिसमें कभी कविता बहा करती थी, गुलाब के फूल महका करते थे, अब काँटों का एक घना जंगल उग आया था, परिणामस्वरूप मैं गहरे कुएं जैसे डिप्रेशन में चली जाती थी[101]।''

[99] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 12

[100] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 88

[101] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 55

जब भारत-पाक युद्ध के समय दिल्ली में काफी तनाव भरा समय था। सुशील जी ने अपनी पत्नी को रहने के लिए गोरखपुर बुलाया था। पति का निमंत्रण उन्हें अभिभूत करता है। उन्हें अपने खोए हुए अस्तित्व को फिर से प्राप्त करने का मौका मिला। गोरखपुर में लेखिका की मुलाकात मिसेज सचदेवा से होती है। वह बहुत खुले विचारों की है। उनका आत्मविश्वास लेखिका को अचम्भित करता है। वह समाज की चिंता न करके अपनी इच्छाओं को प्राथमिकता देती है। उनका कहना था कि - ''मुझे लगता है जीवन में सुख कोई स्थिति नहीं है, बस एक फीलिंग है, जो उड़ते हुए रबड़ के गुब्बारे की तरह दूर होता जाता है, इसलिए वह सुख, जब जहाँ, जिससे मिले उसे झपट लो और मुट्ठी में बंद कर लो, कसकर फिसलने मत दो[102]।''

कुसुम अंसल की दो पुत्रियाँ और एक पुत्र है। तीसरी संतान के रूप में पुत्र की प्राप्ति लेखिका को आनंद विभोर हो गई है। वह लिखती है - ''जब आँख खोली तो लगा, कोई गंधर्व गीत गा रहा है, वह एक पूर्ण हो आने का पल था, विपरीतताओं के मध्य एक सुख का पल था। बेटे की माता होने का आनंद, गौरव सभी इन शब्दों में ध्वनित हो रहे हैं। आगे पति को उपकृत करने वाला भाव भी व्यक्त हुआ है | सुशील ने मेरी थकी आँखों में झाँककर 'थैंक्स' कहा था, मुझे लगा था उनके लिए कुछ कर पाने का शायद यही एक प्रयास था जो मैं निभा

[102] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 99

सकी थी[103]।'' कुसुम अंसल के पति दिल्ली में बहुमंजिला इमारतें बनाने का व्यवसाय दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने लगा। पति के व्यवसाय के प्रति तन्मयता उनके काम को समृद्धि की ओर बढ़ा रही थी। कुसुम अंसल अकेलेपन का शिकार हो रही थी। लेखिका डिप्रेशन से छुटकारा पाने के लिए 'इप्टा' के गम से जुड़ी यह अपने जीवनानुभवों का वर्णन इस तरह कह रही है कि - ''रंगमंच का यह वातावरण मुझे बहुत अपना लगता, अजीब-सा विरोधाभास था, जो जीवन मेरी वास्तविकता था जो मुझे नाटक जैसा लग रहा था, और ये नाटक जो जीवन नहीं था मुझे अपना लगता था, शायद इसलिए भी कि मुझे लगता मेरा अस्तित्व, मेरी साँसे उतनी बेमानी नहीं है, जितना मेरी स्थिति मेरे लिए बना रही थी। यहाँ की यह सृष्टि मुझे छूती ही नहीं थी, तल्लीन भी बनाती थी[104]।'' अब कुसुम अंसल का परिवार रगं मंच के काम से नाराज था। जिस वजह से उन्हें अपनी सास की धमकियों का शिकार होना पड़ा था। आगे चलकर कुसुम अंसल जी का परिचय पत्रकार और शायर सलमान से हुआ। अब लेखिका का पढ़ने लिखने का शौक फिर से जाग गया है। अबकी बार वो उपन्यास लिखने में तल्लीन हो गई, और उनकी मेहनत रंग लाई। उनका प्रथम उपन्यास 'अतीत के आंचल' में पूरा हुआ लेकिन स्टार पब्लिकेशन ने उसे 'उदास आँखें' नाम से छापा। कुसुम अंसल अपनी प्रथम

[103] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 103

[104] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 112

प्रकाशित रचना को देखकर बहुत खुश होती है - ‘‘मैं खुश थी, उपन्यास को हाथों में लेकर रोमांचित हो रही थी मेरे रोम रोम में उन्माद लहरा रहा था अजीब अनुभूति थी[105]।’’

घर परिवार वालों ने उनकी उपलब्धि पर कोई सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं की। उपन्यास पर पाठकों के पत्र लेखिका को अपनी रचनात्मक क्षमता का बोध कराते हैं| सलमान के प्रयासों से कविताओं का संकलन ‘मौन के दो पल’ देवेन्द्र सत्यार्थी की भूमिका के साथ छपा। हिन्दी के लेखकों की राजनीति से सलमान तथा लेखिका दोनों अनभिज्ञ थे - ‘‘पर लेखकीय संसार की उस मेथोडोलोजी से अनभिज्ञ में लेखकीय संसार की परिधि से बाहर रह गई यहाँ कोई न कोई आपको प्रमोट करता है कोई न कोई आपको लेखकीय संसार में प्रस्थापित करता है, तभी आपकी पुस्तक की ठीक ढंग से आलोचनाएं छपती है, गोष्ठियों होती है और फिर कॉफी हाउस आदि में आप चर्चा का विषय बनते हैं। उसके बाद ही आप लेखक स्वीकारे जाते हैं[106]।‘‘ अब कुसुम अंसल नाराज न होकर लगातार लिखती रही। इस लेखिका द्वारा लिखित ‘नींव का पत्थर’ उपन्यास प्रकाशित हुआ। स्वयं लेखिका ने साहित्य सम्मेलनों में जाकर वहाँ की खेमेबाजी तथा राजनीति को समझा। उनकी रचनाएँ प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी। लेखिका को ‘एक और पंचवटी’ उपन्यास के लिये काफी सराहा गया और उसका अंग्रेजी तथा पंजाबी में अनुवाद भी लेखिका

[105] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 137

[106] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 120

के उपन्यास पर सुप्रसिद्ध फ़िल्मकार बासु भट्टाचार्य ने 'पंचवटी' नाम से फीचर फिल्म बनाई| यह फिल्म तोक्यो, टोरंटो, ताशकंद इत्यादि में हुए फिल्म उत्सवों में दिखाई गई। लेखन के क्षेत्र में लेखकों का अहं भाव उनकी हीन भावना को उजागर करता है। वह स्वयं लिखती है कि - ''सच तो यह भी है कि कोई किसी को ठीक से पढ़ता भी नहीं है, पढ़ लेता है तो अपनी ही हीन ग्रंथि में सिकुड़ता चला जाता हैः और बहाने ढूँढ़ता है कि उस लिखने वाले को या लिखे हुए को किसी प्रकार से नीचा दिखा सके| लेखन का क्षेत्र, अगर ध्यान से देखें तो कबड्डी के मैदान जैसा हो गया है। जहाँ एक लेखक दूसरे लेखक की लेखकीय मौत के लिए भागता है, दबोचता है, झपट्टे मारता है, प्रतीक्षा करता है कि उसकी साँसें कमजोर पड़ जाये और वह मृत घोषित कर दिया जाये[107]।'' लेखिका अपने परिवार के साथ यूरोप यात्रा पर गई, वहाँ वह मानवी रिश्तो में स्वार्थ देखकर अचंभित हो जाती है और स्वयं कह उठती है - ''उनके जीवन का ध्येय बस धन अर्जित करना भर है। अगर आप धनवान हैं तो आपका अस्तित्व कुछ है अन्यथा बेमानी है। यूरोप में आप साधारण व्यवहार नहीं कर सकते- साधारणता, सहजता, पागलपन समझ ली जाती है और पागलों को तो पागलखानों में बंद करना ही होता है। यूरोप में वृद्ध हो जाना भी गुनाह है, बूढ़े नागरिकों को 'वृद्ध-गृहों में भरती कर दिया जाता है| एक कारागार से दूसरे कारागार तक कौन सी गांठ कहाँ खुले कुछ

[107] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 125

पता नहीं चलता[108]। लेखिका अपने पति के साथ व्यापार के सिलसिले में लंदन, बगदाद आदि अनेक देशों में गई। इस प्रकार से उन्होंने यात्राओं के विभिन्न आयामों से गुजर कर अपने जीवन में नये अनुभवों को संचित किया। दोनों बेटियों के विवाह के बाद लेखिका जीवन में अकेलापन महसूस करने लग जाती है। वह अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए पंजाब विश्वविद्यालय से ''आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में महानगरीय बोध'' विषय पर शोध करने में जुट जाती है। शोध ग्रन्थ का टंकण पूर्ण होने पर यह उसे जमा करने के लिए चण्डीगढ़ विमान से जाती है। विमान में तकनीकी कमी आ जाने के कारण विमान हिचकोले खाने लगता है। लेखिका शोध की पांडुलिपि को अपने अंग में समेटकर सोचने लगती रहती है कि - ''यदि गिरूँ तो यह मेरे शरीर से चिपकी रहे- मेरे परिश्रम की, मेरी अनसोई रातों की, इस पांडुलिपि का अंत यही होना था? यदि यह दुर्घटना मेरे लौटते समय होती तो कम से कम मेरी मृत्यु के साथ मेरे डॉक्टर हो जाने की उपलब्धि मेरे साथ जाती[109]।'' फिर एक बड़ा हादसा होने से टल जाता है और यान चंडीगढ़ की धरती पर उतर जाता है। अब लेखिका अपने शोध प्रबंध की प्रतियाँ विश्वविद्यालय में जमा करके निश्चिंत हो जाती है, और कुछ समय के बाद उन्हें 'डॉक्टरेट' की उपाधि प्राप्त होती है। लेखिका का पति अपनी पत्नी की सफलता से प्रसन्न हो जाता है। कुसुम अंसल ने दूरदर्शन के लिए तितलियाँ और बच्चों के लिए

[108] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 137

[109] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 87

इन्द्रधनुष नाटक लिखा, जो काफी प्रसिद्ध हुए। वह वीमेन्स इण्टरनेशनल क्लब की सदस्या और 'फिक्की लेडीज ऑर्गेनाइजेशन (2000-2001) की अध्यक्षा रही| लेखिका अपने अनेक देशी-विदेशी जीवनानुभवों के साथ अपने दुःखदर्द का खुलासा करते हुए स्त्री मन की अनेक परतें खोलती रही हैं। उन्होंने इस प्रकार से कहा - ''अरविन्द जैन 'जो कहा नहीं गया' को किसी महिला रचनाकार की पहली आत्मकथा बताते हैं और एक ऐसी खिड़की बताते हैं जिससे झांककर समाजशास्त्रीय शोधकर्ता सुविधासम्पन्न वर्ग की भीतरी झलक ले सकता है[110]।''

डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र जी स्वयं बताते हैं कि - ''कुसुम अंसल की आत्मकथा में आसक्ति-विरक्ति का पछाड़ी खेल दिखाई पड़ता है। अलीगढ़ के अमीर घर में इकलौती बेटी को अनाथ बालिका की तरह पाला जाता है और उसे संतानहींन दम्पती (आगरा वाले) की गोद लेने के रूप में 'डोनेट' कर दिया जाता है। संतान के रूप में बालिका का स्थान नीचे है, इस धारणा वाले समाज की माया ही अपना मकड़जाल फैलाए हुए दिखाई पड़ती है[111]।'' अरविन्द जैन जी का कहना है कि - ''हिन्दी साहित्य में किसी लेखिका द्वारा लिखित प्रकाशित पहली आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया है। इस ऐतिहासिक पहल में कुसुम अंसल के उन अनुभवों का कच्चा चिट्ठा है, जो सहा नहीं गया उनसे[112]।'' अब इस प्रकार 'हंस' पत्रिका के

[110] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 40

[111] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 43

[112] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 101

संपादक राजेंद्र यादव जी ने कुसुम अंसल जी की आत्मकथा के बारे में कहा है कि - ‘‘कुसुम अंसल की आत्मकथा एक उच्च परिवार की सुशील, सुरुचिपूर्ण व संस्कारवती कुलवधू की कहानी है, उसमें औरत कुसुम कहाँ है? वहाँ आदर्श बेटी, पत्नी, माँ, समाजसेवी, लेखिका सभी कुछ है| धर्म के भेदभाव को लेकर प्रारंभिक प्रश्नाकुलता के सिवा व्यक्ति कुसुम कहीं नहीं है। अपने बारे में उसका कोई फैसला ऐसा नहीं है जो उस समाज के लिए असुविधाजनक हो[113]।‘‘ निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत आत्मकथा में कुसुम अंसल का व्यवहार एक कुशल व्यवहार है। वह एक आदर्श बेटी, पत्नी, बहू तथा माँ के रूप में रही है। लेखिका ने अपने देश-विदेश के अनुभवों को भी साझा किया है। इस लेखिका की आत्मकथा बहुत ही रोचक है। अपने जीवन के अनेक दुःख दर्द अनुभवों को पाठकों के सामने रखा है। अपने हिन्दी साहित्य मे लेखकों के प्रति दुर्व्यवहार को भी उजागर किया है। तो उसकी कटु आलोचना हो या फिर वह लेखक बने ही ना। वही एक लेखक की दूसरे लेखक के साथ राजनीति भी बताई है।

2.4 **कृष्णा अग्निहोत्री-लगता नहीं है दिल मेरा-1997**

‘लगता नहीं है दिल मेरा’ कृष्णा अग्निहोत्री जी की आत्मकथा सन् 1997 में प्रकाशित हुई। आत्मकथा के नाम से ही पता चलता है कि वह इस भवसागर रूपी संसार से पार उतरना चाहती है। कृष्णा अग्निहोत्री ने सदैव दूसरों पर विश्वास

[113] जो कहा नहीं गया, कुसुम अंसल, पृ0 76

किया, और दूसरों में इनके सीधेपन की धज्जियां उड़ा दी। अपने जीवन में कदम-कदम पर धोखा खा कर लेखिका स्वयं टूट चुकी है। डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र जी का कहना है कि - ‘‘लगता नहीं है दिल मेरा वही कह सकता है, जिसकी जिंदगी और परिवेश उसे दयार सी हो गई हो”[114]। कृष्णा अग्निहोत्री ने समाज के ऐसे परिवार में जन्म लिया है जहाँ लड़की को बोझ समझा जाता रहा हो। कृष्णा के जन्म पर उनके पिता को प्रसन्नता नहीं हुई थी। इस परिवार स्वयं जन्मदायिनी माँ उनको प्रेम नहीं करती है। परिवार वालों के इस साथ को लेखिका ने बचपन से ही झेला और और अब तक सहन करती आ रही है। वह स्वयं बताती है कि - ‘‘माँ मुझे प्यार नहीं करती थीं, पर मैं अम्मा को हृदय से प्यार करती थी| शायद माँ तो बच्चों की एक है, बच्चे कई होते हैं। मैं लड़की क्यों बनी यह मुझे नहीं पता। यह लड़की कान्यकुब्ज तिवारी के यहाँ क्यों पैदा हुई? उससे पूछा नहीं गया जीवनपर्यंत माँ के स्नेह व प्रेम के लिए मैं तरसती आई[115]।‘‘ लेखिका के माता-पिता के लिए बच्चों की इच्छाओं और भावनाओं का कोई महत्त्व नहीं था। ज्यादातर वह अपनी इच्छाओं को विशेषकर लड़कियों पर लादते थे। इस घर में मैं महसूस करती हूँ कि - ‘‘किसी को यह चिंता नहीं थी, मैं क्या चाहती हूँ। मुझे क्या अच्छा लगता है, क्या बुरा लगता है। मैं क्या सोचती हूँ[116]।‘‘ कृष्णा अपनी बहन के जन्म के

---

[114] डॉ. सरजू प्रसाद, पृ0 22

[115] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 67

[116] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 76

समय उनके पिता के चेहरे पर मातम सा छा जाना समझ जाती है। लेखिका लड़कियों के प्रति हो रहे भेदभाव पर सोच विचार करती है कि - ‘‘यानि लड़की लड़के से अच्छी नहीं होती। परिवार में लड़का होने से ही मां-बाप खुश होते है क्या[117]?’’ कृष्णा अग्निहोत्री का भाई बचपन से ही उसका विरोधी बना रहता था। बचपन में बेटे और बेटी में विभेद को कारण स्वयं लेखिका को अपने भाई के आगे झुकना ही पड़ता था। भाई की मानसिकता को आज वह समझ रही है कि - ‘‘उसके अव्यक्त मन को मेरे दुखों व मेरी असफलताओं को देख प्रसन्नता मिलती थी| आज तक वह मेरी रिसती पीड़ाओं के विषय में हमेशा अंदरूनी भाग का एक दर्शक सा मौन खड़ा मन ही मन मुस्कराता रहा[118]।’’ कृष्णा के अपने पड़ोस के लड़के अवतार सिंह ने बचपन में उनके साथ दुर्व्यवहार करने की कोशिश की, जिसको वह बचपन में समझ नहीं पाई लेकिन आज स्वयं सोचने लगते है कि - ‘‘लड़की का कोमल भोला बचपन भी क्या पुरुष से सहन नहीं होता, वह उसे भी अपने गंदे सुख हेतु चीर देने को आतुर रहता है[119]।’’

घर के बड़े बुजुर्ग भी अपनी काम इच्छाओं की पूर्ति के लिए अबोध बच्चियों तक को नहीं छोड़ते हैं। लेखिका के रिश्ते में चाचा ने एक बार उन्हें अपनी हवस का शिकार बनाना चाहा था। वह स्वयं बताती है कि उन्होंने एक बार मौका पाकर -

---

[117] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 88

[118] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 35

[119] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 90

‘‘आव देखा न ताव मुझे कसकर पकड़ लिया और मेरे नाजुक अनछुए कुंवारे होठो व गालों को पागल से चूमने लगे। कमसिन दुबली-पतली मैं छटपटाती रही, जलते अंगारों की सी वह जलन थी। रिश्ते में चाचा और इतना बड़ा कर्म, इतना घिनौना[120]?‘‘

इसी प्रकार से एक बार फिर लेखिका के पिता के मित्र ने भी उन पर दृष्टि डाली लेकिन वह उनकी नीयत को जल्द ही समझ गई थी। लेखिका ने स्वयं लिखा है - ‘‘क्या लड़की पैदा होते ही प्रत्येक उम्र व स्थिति में पुरुष के खसोटने की ही वस्तु होती है[121]?’’ लेखिका का विवाह सोलह वर्ष की आयु में हुआ| मैट्रिक पास कृष्णा के पति सत्यदेव अग्निहोत्री आई०पी०एस० थे| वह सामंती मनोवृत्ति से ग्रस्त थे। उनका दाम्पत्य जीवन रसहीन था। उनके पति को शराब, जुआ और परस्त्रीगमन की बुरी आदत थी। पति के निरर्थक आरोप लेखिका को विचलित कर देते हैं और पति द्वारा शक किये जाने पर वह उन्हें छोड़ना चाहती है। वह स्वयं कहती है ‘‘मन करता कैसे भी भागकर किसी भी चाहने वाले की बांहों में ठहर शांति, सुख के कुछ क्षण ही जी लूं, लेकिन परिवार, समाज, माता-पिता, सन्तान के अपने घेरे भी तो कुछ कम दृढ़ नहीं होते, इसलिए मैं कछुए की भांति अपनी भीतरी तड़प को सिकोड़ती ही गई[122]।’’ पति सत्यदेव अग्निहोत्री जी को एक बार

[120] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 114
[121] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 140
[122] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 79

मन्त्री जी ने छुट्टी के दिन कोई काम बताया, लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया। मंत्री जी ने नाराज होकर रिवरशन का आदेश भिजवा दिया और उन्हें इलाहाबाद से मुरादाबाद जाना पड़ा। कृष्णा सोचती थी कि अब तो ठोकर खाकर अग्निहोत्री जी सुधर जायेंगे । किन्तु फिर भी वह कहता है कि - ''उन्होंने एक लाइन हाजिर थानेदार से पंगा ले लिया और उसने उन्हें फँसा दिया। इसके पहले किसी आई०पी०एस० आफिसर को रंगे हाथों पकड़ने वाली 'रेड' नहीं हुई थी, रुपये आदि तो अग्निहोत्री जी कमा नहीं पाये, परन्तु बदनामी तो कमा ही ली[123]।'' अब आगे चलकर अग्निहोत्री ने आई०जी० की सलाह पर इस्तीफा दे दिया। कृष्णा अग्निहोत्री को अपना भविष्य शराबी, जुआरी पति के साथ अंधकारमय लगने लगा। अब कृष्णा अग्निहोत्री अपनी पुत्री के भविष्य के लिए अत्यधिक चिंतित थी इसलिए उन्होंने आगे पढ़ने का विचार बनाया। अब वह रात को पति से मार खाती और जब वह मार-पीटकर थककर सो जाते, तब वह उठकर पढ़ती और दिन में परीक्षा देती। उसका पति उनकी पढ़ाई से भयभीत रहते थे। कहीं मेरी पत्नी आत्मनिर्भर होने पर उनके अत्याचारों पर प्रतिशोध न करने लगे। अब उन्होंने काफी मेहनत की और उनकी मेहनत रंग लाई। उन्होंने हिन्दी, अंग्रेजी दोनो विषयों में एम०ए० किया तथा डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन' जी के निर्देशन में शुक्ल के निबन्धों में रस विषय पर शोध किया। अब लेखिका आई०पी०एस० पति की यातानाओं से

[123] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 101

तंग आकर बेटी नीहार के साथ अपने मायके खंडवा आ जाती है। पति के घर से लौटी बेटी अपने माता पिता के लिए बोझ बन गई। पति की अधिक शराब पीने की लत व महिलागमन की प्रवृति के कारण शासन ने उन्हें सस्पेंड करने का नोटिस दे दिया जाता है। अरविन्द जैन जी ने कहा है कि - ‘‘जुआ, शराब और व्यभिचार की आदत पति को दीमक की तरह खा गई। नौकरी खतरे में बड़े अफसरों द्वारा प्रमोशन के लिए पत्नी की शर्त, नहीं तो ट्रांसफर या डिमोशन, पत्नी अपने रूप और यौवन या पिता के सम्बन्धों और बच्ची के नाम पर आखिर कब तक अफसरों, मंत्रियों से रहम की अपील मंजूर करवाती[124]?‘‘ अब वह लेखिका अपने पति और परिवार वालों की उपेक्षा एवं प्रताड़ना से दुखी होकर अब वह स्वयं कहानी लिखने का काम करने लगी। उनकी अपनी पहली कहानी सारिका में भेजी, परन्तु कहानी छपी नहीं। राजेन्द्र अवस्थी ने कहानी लौटाते हुए एक औपचारिक पत्र लिखा जिसमे वह लेखिका से मिलने के लिए कहने लगे हैं। राजेन्द्र अवस्थी पाँच बच्चों के पिता कृष्णा जी को प्रेम जाल में फंसाने का प्रयास करने लगते हैं और उसको अपने पति से तलाक लेने के लिए प्रेरित करते हैं। लेखिका उनकी मंशा भाँप जाती है और वह कह देती है कि ‘‘मैं रखैल बनकर कभी नहीं जी सकती और आवेश के क्षणों में सुख के लिए मेरी भावना से कोई भी खिलवाड़ करे तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा[125]।’’ लेखिका की अपनी चाह है कि दाम्पत्य

[124] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 30

[125] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 120

जीवन का सुख हो और अपने पति के साथ उसी पुरुष की छत्रछाया में अपना जीवन यापन करने की उनकी अभिलाषा थी। वही अपनी इसी वशीभूत अभिलाषा के कारण मजिस्ट्रटेट श्रीकान्त जोग के प्रेमजाल में फंस गई है। श्रीकांत जोग जी चार बच्चों के पिता ने अपने व्यवहार से ही अपनी पत्नी को पागल करार कर दिया था। लेखिका को पागलखाने के डॉक्टरों ने भी श्रीकान्त से दूर रहने की सलाह दी थी, परन्तु लेखिका की आँखों पर जोग के प्रेम की पट्टी बंध गई थी। इस तरह से वह अपनी भूल का अहसास करती हैं कि - ‘‘मुझे जोग साहब का सौंदर्य मजिस्ट्रेट की पोस्ट उसकी डिग्निटी तो दिख रही थी, परंतु उनके घर की गरीबी व चार बच्चों को मैं नजरअंदाज क्यों कर रही थी। जिस व्यक्ति के चार बच्चे हों, आर्थिक स्थिति अति साधारण हो, वहाँ कोई भी औरत कितना समझौता कर सकती है। मैं जब अग्निहोत्री जी के परिवार में सब भुगत चुकी थी, तब भी मेरी आंखे कैसे इस कटु यथार्थ से मुंद गई, पता नहीं[126]।‘‘

अब वह श्रीकान्त के उकसाने पर वह अपने पति से तलाक लेने को राजी हो जाती है। अग्निहोत्री ने कृष्णा के चाहने पर तलाक के कागजातों पर हस्ताक्षर कर उन्हें विवाह जीवन से आजाद कर दिया। अब कृष्णा ने जोग के साथ एक मंदिर विवाह कर नये संसार में पदार्पण किया ही था कि उसका तबादला जगदलपुर हो गया। कृष्णा जी जब उनके साथ चलने लगी तब वह जोग साहब रास्ते में ही कह देता हैंकि - ‘‘मैं तलाक के बाद सरला को नहीं छोड़ूगा, जब भी डॉक्टर कहेगा, वह घर

[126] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 74

रहेगी। तुम्हें इससे एडजस्ट करना पड़ेगा[127]।'' इस बात लेखिका को बहुत ही अधिक गुस्सा आ जाता है। जोग ने अपना रंग गिरगिट की तरह बदल लिया है। वह कृष्णा को खंडवा वापस लौट जाने को कहने लगते हैं। कृष्णा किंकर्तव्यविमूढ़ होकर असमजंस में पड़ गई थी कि अब वह क्या करेगी | उनके शब्दों में - ''लोग क्या मजाक बनाएंगे । निन्नी क्या सोचेगी? पर मेरा जगदलपुर जाने का निर्णय गलत था। श्रीकान्त ने तो मुझसे रिश्ते तोड़ने के लिए ही सोचकर यह सब कहा था, परंतु मैंने महज उनकी गफलत या जिद समझ उनके साथ जगदलपुर जाना ठीक समझा[128]।'' अब आगे उसकी प्रमोशन होने पर उनके तेवर और भी बदल दिए गए। वह आगे कह रही थी कि - ''श्रीकान्तजी सैशन जज क्या बने, अपने घमंड में चूर होकर मुझे पूरी तरह अपमानित एवं लांछित करने का ढंग अपनाने लगे। एक एस०पी०, दूसरा जज ही बनकर रहा पति नहीं[129]।'' इस हमारे समाज में अकेली रहने वाली स्त्री को हेय दृष्टि से देखा जाता है तथा समाज का प्रत्येक पुरुष उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझने लगता है। यदि कोई भी औरत अपने पति का विरोध करे तो उसपर झूठे लांछन/आरोप लगा दिए जाते हैं। कृष्णा जी अपने दुःख को दुःखी होकर समाज में रू-ब-रू कराती हुई कहती है कि - ''मैंने तो जिंदगी में यह अहसास किया या कहें कि मुझे अहसास कराया गया कि

[127] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 40
[128] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 20
[129] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 110

अकेली रहने वाली महिला पर प्रत्येक पुरुष अपना अधिकार जमाना चाहता है, किसी की दृष्टि उसके रुपये, जायदाद या किसी की नजर उसके शरीर पर रहती है[130]।'' लेखिका अपने लेखन से किसी को दुखी नहीं करना चाहती है, किन्तु इस समाज में रहने वाले समाज में उठने वाली उन परिस्थितियों और समस्या से परिचय करवाना चाहती है कि - ''बहुत झेला, बहुत भोगा-बहुत सहा... नहीं सहन हुआ तो लिख डाला| लिखने का उद्देश्य किसी को दुःख पहुँचाना या लांछित करना नहीं है। जो जिसने दिया उतना आज अभिव्यक्त हो ही गया| तब भी यदि किसी को कुछ चोट या दुःख पहुँचे तो यह सोचकर कि उसने मुझे कितना बड़ा घाव दिया है, मुझे क्षमा दे क्योंकि मैं अपने आपको विश्लेषित करने के बाद इन गहरे अहसासों को दफन नहीं कर सकी[131]।'' लेखिका ने हिन्दी साहित्यकारों के प्रकाशकों की गंदी घटिया मनोवृत्ति से दुःखी होकर अपनी लेखनी से उनका सबका कच्चा चिट्ठा खाले दिया गया है। स्वयं प्रकाशक लेखिका की रचनाओं को छापने के लिए ले लेते है, परन्तु अकेलेपन का फायदा उठा रायल्टी देने के लिए परेशान करते थे। वह स्वयं यह बात लिख देती है कि - ''एक अकेली महिला से उन्हें कोई भय नहीं, क्योंकि मैं रायल्टी हेतु उनके शहर तक बार-बार रुपया खर्च करके कैसे दमतोड़ भागूंगी? भारत में सच्चे लेखक का भविष्य किस तरह धुंधला बनाया

[130] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 55

[131] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 89

जाता है[132]।'' कृष्णा अग्निहोत्री की नियुक्ति मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री के सहयोग से खडंवा के नवस्थापित महाविद्यालय में हिन्दी व्याख्याता के रूप में एक नौकरी मिल गई थी। डॉ. शंकर दयाल राम ने शिक्षा मंत्री बनते ही कृष्णा को नौकरी के पद से हटा दिया था। यह कृष्णा की नियुक्ति गर्ल्स डिग्री कॉलेज खंडवा में हिन्दी व्याख्याता के पद की नौकरी थी। कॉलेज की प्रधानाचार्य भी उनका हमेशा अपमान ही करती थी। इस समाज में रहकर मनुष्य कितना ही झूठ फरेब कर लेता है। लेकिन मनुष्य अपनी स्वयं की अन्तरात्मा से कुछ झूठ नहीं बोल सकता है। लेखिका अपने पर हुए अत्याचारों को अपनी आत्मा के कठघरे में रखते हुये कसम खाकर लिखती है कि - ''मेरा बयान नंगा रहे.. एकदम प्राकृतिक... साफ अहसासों की परतें कुछ इस तरह उधड़ती जाएं कि उनकी बारीक रेखाएं भी बाहर न रहें। जीवन भर लू लपटों के थपेड़े झेलने के बावजूद आत्मा निश्चित ही इन सबसे प्रभावित नहीं होती। मैं मुक्त मन से उसके सामने अपनी बात को विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत कर सकती हूं[133]।'' इस समाज में प्रतिभावान व्यक्तियों को जो सम्मान मिलना चाहिए, वह उन व्यक्तियों को नहीं मिल पाता है। जिस कारण से उन प्रतिभाशालियों का मनोबल टूट जाने लगता है। लेखिका ने स्वयं लिखा है कि - ''प्रगति के नगाड़े बजाकर इक्कीसवीं सदी तक पहुंचाने वाला भारतीय पुरुष समाज अब भी बुद्धिजीवी, कलाकार, प्रतिभाशाली महिला और

[132] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 37

[133] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 38

साहित्यकार को वास्तविक सम्माननीय दृष्टि से नहीं देखता। उसके लिए वह इस्तमाल की वस्तु है, नाटक, प्रेम, बहकावा और जोर-जबरदस्ती से वह उसे अपने अधीन करना चाहता है[134]।'' आज वर्तमान समय में हमारे देश में प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति कर ली है। फिर भी एक औरत के प्रति पुंसवादी सोच आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। समाज में अकेली रहने वाली स्त्री पर तरह-तरह के ताने कसे जाते रहते हैं। उन औरतों पर और उनके चरित्र पर सदा ही अंगुली उठाने में समाज के लोगों को आनंद की प्राप्ति होती रहती है। लेखिका ने स्वयं लिखा है कि - ''मैंने तपस्या जैसा जीवन जिया, परंतु मेरे अपनों व नगर के कुछ पांच-सात लोगों ने मेरा यहां जीना असम्माननीय बनाने का ही कुचक्र रचा... मेरी ओर सहयोगी हाथ शायद एक या दो हों, पर मुझे तोड़ने वालों की यहां भीड़ है, पर यह मेरी कर्मभूमि है"[135]। अरविन्द जैन जी का कहना है कि - ''वह अपने आपको विश्लेषित करने के बाद इन गहरे अहसासों को दफन नहीं कर सकी और अपनी मीठी खट्टी स्मृतियों व अनुभवों को यथावत रख दिया। कहने की जरूरत नहीं कि वे राष्ट्रीय स्तर की लेखिका है। जानी-मानी, प्रसिद्ध, सुपरिचित[136]।'' वह स्वयं आगे बताते हैं कि - ''पुरुष के लिए प्रेम खेल हो सकता है, लेकिन स्त्री के लिए प्रेम उसका सम्पूर्ण अस्तित्व है। औरतें नहीं जानती कानून की भाषा परिभाषा, इसलिए

[134] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 73
[135] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 26
[136] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 62

अक्सर धोखा खा जाती है। परन्तु पुरुष इस मामले में बहुत चौकन्ना और चतुर है[137]।'' अपने जीवन के समय में कदम-कदम पर एक के बाद एक धोखा खा-खा कर वह पूरी तरह से अन्दर से टूट चुकी थी। वह कहती है कि - ''तपती रेत पर नंगे पाँव के इस सफर में बहुत कुछ 'सफर' करना पड़ा है। तरह-तरह के अच्छे-बुरे सहयात्री या मठाधीश मिले (मिलते हैं और मिलेंगे), कुछ ऐसे भी जिनकी साहित्य में स्त्री को होने देने के लिए एक ही शर्त है- पहले संग सोओ, फिर हम तुम्हे साहित्य का सितारा बना देंगे[138]।'' कृष्णा का अपना स्वयं का जीवन बहुत से कांटों से भरा हुआ है। पुरूष का अहंकार उसको अंदर से ही तोड़ देता है। अपने पुरूष से अलग रहने पर भी अन्य दूसरे पुरूषों की गंदी निगाहें उनके जीवन को ओर भी संकटों में डाल देता है। हर पुरूष पर वह स्वयं का विश्वास करके भी अंत में प्रत्येक से धोखा ही खाती रहती है।

कृष्णा अग्निहोत्री की अपनी आत्मकथा खंड के दूसरा खंड 'और और औरत' शीर्षक से 2010 में प्रकाशित हो चुका था। लेखिका का स्वयं प्रथम खंड 'लगता नहीं है दिल मेरा' पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं पर भूमिका में कहा है कि – "मुझे हर्ष है कि आत्मकथा की व्यथाओं को कई परंपरावादी व्यक्तियों ने भी सराहा। आत्मकथा में केवल रहस्य या अश्लील प्रेमकथाएँ लिखना नहीं चाहा, वहाँ मेरी रोज की लड़ाई

[137] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 59

[138] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 67

है, जीवन में रोमांस ही सब कुछ नहीं है, अपितु अर्थ, संयम, दैनंदिन की अनिवार्य आवश्यकताओं का भी संघर्ष है[139]।''

स्वयं कृष्णा ने अपने चरित्र के बारे में भी कहा है कि - ''कोई भी पुरुष मुझसे सौदा करके, मुझे नहीं पा सका। इसका मुझे नाज तो है लेकिन उच्छृंखलता या व्यभिचार मेरी दृष्टि में गलत होते हैं, प्यार अलग अनुभूति है[140]।''

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कृष्णा के जीवन में जो भी घटनाऐं घटी वे घटनायें उन्होंने अपनी आत्मकथा के रूप में कागज पर उकेर दी। इन सब घटनाओं से पता चलता है कि जीवन में उन्होंने समाज रूपी, पुरूष से बहुत ही संघर्ष किया है। वह अपने एक संघर्ष को अपनी आत्मकथा के द्वारा स्वयं कह चुकी है ।

[139] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 95

[140] लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 94

2.5 **कौसल्या बैसंती-दोहरा अभिशाप** -1999

कौसल्या बैसंती की हिन्दी में लिखी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' मराठी भाषा में है। किसी महिला की हिन्दी मराठी भाषी में लिखी यह पहली आत्मकथा है। यह अपनी आत्मकथा को हिन्दी में लिखवाने के पीछे कौसल्या जी की यही मंशा थी कि अधिक से अधिक पाठक इसे पढ़ सकें और दलित स्त्रियों के दुःख दर्द से अवगत हो सकें। अपनी आत्मकथा का नामकरण कौसल्या बैसंती ने इसका नामकरण 'दोहरा अभिशाप' इसलिए किया क्योंकि उन्होंने समाज में एक स्त्री होने और एक दलित स्त्री होने के कारण दोहरी यातनाएँ झेली। स्त्री होना और एक गरीब दलित स्त्री होना उनके जीवन के लिए दोहरा अभिशाप बन गया। कौसल्या बैसंती के माता-पिता नागपुर की एम्प्रेस मिल में थे। कौसल्या की चार बहनें और एक भाई था। इनके माता-पिता बहुत ही मेहनती थे। वह मिल में काम करके अपने बच्चों को पढ़ाते थे। लेखिका ने अपनी माँ के परिश्रम पूर्ण जीवन, बच्चों की पढ़ाई के प्रति चिंता, स्वयं की नौकरी आदि के लिए संघर्ष का वर्णन किया है। लेखिका ने बचपन में गरीबी झेलने और समाज में पिछड़े होने के बावजूद चुनौतियों को स्वीकार किया। कौसल्या बैसंती ने आत्मकथा की भूमिका में लिखती है कि ''मेरे उच्च शिक्षित पति, लेखक और भारत सरकार में उच्च पद पर सेवारत रहे। उन्हें ताम्रपत्र भी मिला है और स्वतंत्रता सेनानी की पेंशन भी पति ने कभी मेरी कदर ही नहीं की बल्कि रोज-रोज के झगड़े, गालियों से मुझे मजबूरन घर

छोड़ना पड़ा और कोर्ट केस करना पड़ा। उस घर में चालीस वर्ष रही''[141]। कौसल्या बैसंती लिखती है कि ''मैं लेखिका नहीं हूँ, ना साहित्यिकार लेकिन अस्पृश्य समाज में पैदा होने से जातीयता के नाम पर जो मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ी, इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा। मैंने अपने अनुभव खुले मन से लिखे हैं। पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बरदाश्त नहीं करता। पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने पक्ष को उजागर करने के लिए चरित्रहीनता का ठप्पा लगा दे''[142]। लेखिका कहती है कि ''पुत्र, भाई और पति सब मुझ पर नाराज हो सकते हैं, परंतु मुझे भी तो स्वतंत्रता चाहिए कि मैं अपनी बात समाज के सामने रख सकूँ। मेरे जैसे अनुभव और भी महिलाओं को आए होंगे परंतु समाज और परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती और जीवन भर घुटन में जीती है। समाज की आँखे खोलने के लिए ऐसे अनुभव सामने आने की जरूरत है[143]।''

मराठी साहित्य की महिला आत्मकथाओं में सुख-दुःख, अमीरी-गरीबी धर्म-अधर्म आदि का समग्र विवेचन है। मराठी महिलाओं का आत्म संघर्ष उनकी आत्मकथाओं में परिलक्षित होता है। मराठी एवं दलित लेखिकाओं का जीवन संघर्ष अन्य भाषी लेखिकाओं की तुलना में कई गुना अधिक है। समाज में दलित स्त्रियों की स्थिति

[141] दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसंती, पृ0 2

[142] दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसंती, पृ0 34

[143] दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसंती, पृ0 45

का खुलासा मृणाल पांडे करती है कि ‘‘यदि आप एक दलित है, उस पर भी औरतजात, तो प्रताड़ना और उत्पीड़न आपके जीवन का अनिवार्य हिस्सा बनते चले जाते हैं। अधिकतर औरतें इसे अपनी नियति मानकर हर तरह के अत्याचार और अन्याय को मूक होकर झेलती आई हैं[144]।‘‘

बलवान सदा ही बलहीन की सहायता करने के स्थान पर उसका और अधिक उत्पीड़न करता रहा है। इस सवर्ण समाज में कौसल्या को काफी यंत्रणाएँ दी जिसके परिणामस्वरूप वह आत्महत्या करने के लिए आतुर हो गई थी किन्तु अपनी बेटियों के द्वारा दिए गए प्रोत्साहन ने उन्हें जीवन जीने की प्रेरणा दी और कुछ हितैषियों की प्रेरणा से वह आत्मकथा लिखने के लिए तैयार हुई और अपने जख्मों से समाज को परिचित करवाया है। इस आत्मकथा में कौसल्या ने कहा है कि महिलाओं का समाज में बहुत ही शोषण और उत्पीड़न होता रहा है[145]। महिलाएं इस समाज में हर उत्पीड़न को सहन करती हुयी अपने कर्मों की नियति बना लेती है। वो महिलाएं हर प्रकार के शोषण का सहन करती रहती है। इस आत्मकथा में भी लेखिका ने ये ही दर्शाया है कि हर महिला इन अत्याचारों और अन्याय को बिना किसी विशेष के झेलती रहती है। यहां तक की वह अपनी कर्मों का ही फल मानती है। शायद ही मेरे बुरे कर्म करने के कारण ही मुझे भगवान ने ये सजा दी है[146]।

---

[144] दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसंती, पृ0 24

[145] दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसंती, पृ0 25

[146] दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसंती, पृ0 27

2.6 **शीला झुनझुनवाला-कुछ कही कुछ अनकही**-2000

'कुछ कही कुछ अनकही' शीला झुनझुनवाला की आत्मकथा किताबघर प्रकाशन से सन् 2000 में प्रकाशित हुई थी। इस लेखिका का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर में सन् 1927 में हुआ था। इसकी माता जी धार्मिक प्रवृत्ति की थी। वह रामायण का पाठ हर रोज करती रहती है। इस लेखिका पर अपनी माँ के सरकारों का प्रभाव बहुत अधिक था। वह अपने पिता की लाडली बेटी थी। इस लेखिका के परिवार में लड़कियों को अधिक आजादी नहीं दी जाती थी।

शीला जी के घर के आस-पड़ोस में एक अम्मा जी भी रहती थी। उस अम्मा जी का सबसे छोटा बेटा काफी समय से बीमार था। शीला उस लड़के की तरफ आकर्षित होने लगी थी। लेखिका पंजाबी परिवार से थी तथा अम्मा जी मारवाड़ी परिवार से थी। दोनों परिवारों के रीति-रिवाज, रहन-सहन अलग थे। फिर तो प्रेम के आगे धर्म, रीति-रिवाज के बंधन टीले पढ़ जाते हैं। इस लेखिका की शादी परिवार के काफी विरोध के बाद आखिर ठाकुर से ही हुई। लेखिका के घर पर जाने माने कवियों का आना जाना लगा रहता था। धर्मवीर भारती, कैलाश बाजपेयी, फौरन उर्दू के प्रसिद्ध शायर कैफी आजमी, मोहन राकेश, गोपालदास नीरज,

भवानीप्रसाद मिश्र, लक्ष्मीनारायणलाल व हास्य कवि सुरेन्द्र शर्मा लेखिका के पति ठाकुर के अंतरंग मित्रों में थे।

टी.पी. झुनझुनवाला जी का ट्रांस्फर बम्बई से दिल्ली हो गया। उन्होंने राजस्थान की संस्कृति को पुष्पित पल्लवित करने के लिए राजस्थान क्लब की नींव रखी थीं। ठाकुर उसके संस्थापक थे। ठाकुर जी को सांस्कृतिक कार्यों के प्रति विशेष रुचि थी।

शीला जी ने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की पत्रिका 'धर्मयुग' के महिला पृष्ठों का संपादन किया। इनके पति ठाकुर जी असिस्टेंट कमिश्नर के पद पर प्रमोशन होकर दिल्ली गये थे। पत्नी ने दिल्ली आकर महिला पत्रिका 'अंगजा' निकाली। अंगजा का संपादन ढ़ाई वर्ष तक किया था। आर्थिक तंगी के कारण उसे बंद करना पड़ा। उसके बाद लेखिका की नियुक्ति हिंदुस्तान टाइम्स द्वारा प्रकाशित 'कादंबरी' मासिक पत्रिका में सहायक संपादक के पद पर हुई थी। वह 'साप्ताहिक हिंदुस्तान में संपादक के पद पर भी रहीं। राजस्व गुप्तचर निदेशालय में रहते हुए ठाकुर का सामना कई बार ड्रग डीलरों, सोने के तस्करों से भी होता था। इन स्मगलर्स, गुंडों के संपर्क समाज के सफेदपोश मंत्रियों से होते थे। वह मंत्रियों से कहलवाकर दवाब डलवाते थे, तथा न मानने पर स्थानांतरण आदेश भेज दिये जाते थे। ठाकुर का कई बार स्थानांतरण मंत्रियों के आदेश की अवमानना करने से किया गया। ठाकुर

कदाचित विचलित नहीं हुए और अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी लगन, निष्ठा और ईमानदारी से करते रहे।

ठाकुर आयकर की हर नई योजना को टी.वी, रेडियो और लेखों के माध्यम से साधारण जन तक पहुंचाने का प्रयास करते थे। एक बार जब अघोषित संपत्ति को स्वेच्छापूर्वक घोषित करने के लिए राजस्व कर बोर्ड का अभियान चला तब ठाकुर ने रात-दिन एक करके उस योजना को सफल कराया। केवल बंबई में उस समय एक व्यक्ति ने एक करोड़ की अघोषित संपत्ति को मात्र इनके कहने पर घोषित किया। बाद में भी, जब कभी वे मिले तो उन्होंने कहा कि साहब, आपने हमें बचा लिया। अब हम बिना खटके चैन की नींद सो तो सकते हैं। ठाकुर पर लोगों का अटूट विश्वास था। ठाकुर का स्थानांतरण कोलकता से दिल्ली हो गया और डॉक्टर ऑफ इंटेलीजेंस के पद पर उनकी पदोन्नति हुई। लेखिका तथा उनके पति के फिल्मी हस्तियों से भी काफी अच्छे थे। बम्बई की कई फिल्मी हस्तियों से लेखिका की मुलाकात हुई। देव आनंद जी, महेंद्र कपूर, दिलीप कुमार आदि फिल्म अभिनेता राजकपूर ने अपने पुत्र ऋषि कपूर की शादी में टी. पी. झुनझुनवाला को परिवार सहित निमत्रंण दिया| लेखिका के बच्चों की शादी में बड़ी-बड़ी फिल्मी हस्तियाँ आई। लेखिका झुनझुनवाला को भारत सरकार की ओर से पद्मश्री से सम्मानित किया गया। उन्होंने टी. पी. झुनझुनवाला फाउंडेशन की स्थापना की। शीला ने अपनी आत्मकथा में अपने पति के पद का बखान बार-बार किया है।

तीन सौ छियत्तर पृष्ठों की पुस्तक में लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों में आयकर के छापों का भी उल्लेख किया है। आत्मकथा पढ़ते समय एक दुविधा की स्थिति बनी रहती है कि प्रस्तुत आत्मकथा शीला झुनझुनवाला की है या टी.पी. झुनझुनवाला की| उनकी आत्मकथा के लिए यह उक्ति चरितार्थ होती है कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानुमती ने कुनबा जोड़ा। बहुचर्चित एवं प्रतिष्ठित पत्रकार श्रीमती शीला झुनझुनावाला पत्रकारिता में भी अपना विशिष्ट स्थान रखती है। 'धर्मयुग' से पत्रकारिता प्रारम्भ कर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'दैनिक हिन्दुस्तान' तक का उनका सफर अनेक रोचक मोडों में गुजरा है। शीला जी स्वयं भी पत्रकारिता में नए और युवा पत्रकारों को सिखाने बढ़ाने और प्रोत्साहित करने में हमेशा रूचि लेती रहीं। शीला जी का और टी.पी. का गृहस्थ जीवन उनके मित्रों की निगाह में आदर्श माना जाता था।

2.7 **मैत्रेयी पुष्पा-कस्तूरी कुण्डल बसै**-2002

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा भाग-प्रथम 'कस्तूरी कुण्डल बसै' (2002 ई.) स्त्री आत्मकथा-साहित्य की एक बेमिसाल रचना है। अपनी इस आत्मकथा में लेखिका ने अपनी और माँ कस्तूरी की निजी जिंदगी का वास्तविक खाका प्रस्तुत किया है। अपनी माँ से आपसी प्रेम, करुणा, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों को लेखिका ने इस आत्मकथा के माध्यम से बयां किया है तथा लेखिका के बाल्यकाल में कई घटनाएँ घटित हुई। कुछ घटनाएँ विशेष होने के कारण स्मरण

रही, तो कुछ विस्मृत हो गई। इसी संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "यही है हमारी कहानी। मेरी और मेरी माँ की कहानी। आपसी प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों से रची कथा में बहुत सी बातें ऐसी हैं, जो मेरे जन्म के पहले ही घटित हो चुकी थीं, मगर उन बातों को टुकड़ों टुकड़ों में माताजी ने जब-तब बता डाला, जब-जब उन्हें अपनी बेटी को स्त्री-जीवन के बारे में नए सिरे से समझाना पड़ा[147]।"

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में लेखिका ने अपनी माँ कस्तूरी के जीवन में घटित तमाम घटनाओं को उद्घाटित किया है कि किस प्रकार एक लड़की-लड़कों पर न्यौछावर कर दी जाती है। एक लड़की जो सबको सुख देती है, खुश रखती है, घर का चूल्हा जलता रहे के लालच में मात्र आठ सौ चाँदी के सिक्कों के लिए बेच दी जाती है और बेचने वाला कोई पराया नहीं सब उसके अपने है माँ, भाई जिनसे एक लड़की का न केवल इंसानियत का नाता है अपितु खून का रिश्ता भी हैं। आज यह रिश्ता किस कदर खोखला होता जा रहा है कि अपने ही अपनों का सौदा करने से नहीं हिचकिचाते। अपने प्रति अपनों का यह स्वार्थपूर्ण व्यवहार देखकर कस्तूरी को अपने ही जीवन से घृणा होने लगती है। कस्तूरी के शब्दों में "माँ कहती है, साग-पात से पेट भरकर भी इस बात को वह भूल तो नहीं सकती, पर रात के अँधियारे-सी घिरती आती इस लड़की की जवानी, बेटों की राह में

[147] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उपन्यास कहूँ या आपबीती, पृ0 11

अँधेरा करने वाली है, भूख-प्यास भुला डालती है। रीता का कलेजा चटकने लगता है। भगवान क्यों जन्म देता है लड़कियों को? लोग कहते हैं, लड़कियाँ पापों के फल होती है, वे फल विषफल भी हों तो आदमी क्या करे? बेटी रूपी दुश्मन को कोसते रहो, धिक्कारते रहो, छुटकारा नहीं मिलने वाला। माँ सिसक-सिसक कर रोई थी[148]।"

वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश में कंटकों से भरे रास्तों से गुजरती चली जाती है। समाज की यातनाएँ झेलती है, वह अपने पैर इस धरती पर जमाने के लिए संघर्ष करती है लेकिन यह पुरुष प्रधान समाज उसे सदा अपने पैरों तले कुचलने के लिए आमादा रहता है| समाज में लड़की के विवाह की अनिवार्यता की परम्परा के विरुद्ध एक लड़की साहस से विरोध करती है, किन्तु उसका यह साहस इस समाज के लिए दुस्साहस है। एक लड़की का विवाह न करने से साफ-साफ मना कर देना उसके परिवार की शान को कलंक लगा देता है। कस्तूरी के मुख से 'मैं ब्याह नहीं करुँगी' वाक्य सुनते ही माँ ने ही भयभीत होकर देखा और नजरों से कहा- 'कस्तूरी, लड़कियों से ऐसे दुस्साहस की उम्मीद कौन कर सकता है? वे तो माँ-बाप के सामने सिर उठाकर बात तक नहीं कर सकती, मरने का शाप हँस-हँसकर झेलती हैं और गालियाँ चुपचाप सहन करती हुई अपनी शील का परिचय

[148] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 13

देती हैं, तू मर्यादा तोड़ने पर आमादा क्यों हुई[149]? इस आत्मकथा में कस्तूरी गृहस्थी एवं विवाह के नाम पर किसी खूँटे से बँध जाना एक प्रकार का बंधन मानती है। यह एक ऐसा बंधन है जिसमें अगर कोई स्त्री इस बंधन में फँस गई, तो ताउम्र वह इस बंधन से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाती। कस्तूरी की माँ के शब्दों मे - "बेटी धान का पौधा होता है, समय से दूसरी जगह रोप देना ही अच्छा होता है.....'धान का पौधा'! कस्तूरी को विस्मय हुआ। मैं धान का पौधा हूँ' सोचकर वह हँस पड़ी। अनपढ़ भाभी खुद धान का पौधा बन गई है। यहाँ रुकने की शर्त में चाँदी-सोना माँगती है। यही है औरत की जिन्दगी का सार[150]!" सोलह वर्ष की उम्र में कस्तूरी के न चाहते हुए भी उसकी अपनी माँ ने बेटों को सुख देने के लालच में आठ सौ चाँदी के सिक्कों के लिए बेच दिया। कस्तूरी नाम की लड़की सबके भाग्य को सँवारने वाली आज अपने ही भाग्य से धोखा खा बैठी। कस्तूरी की माता जी (चाची) को कस्तूरी के धनाढ्य ससुराल का बड़ा गर्व होता है कि उन्होंने अपनी बेटी की शादी एक धनवान परिवार में की है, किन्तु जब बेटी कस्तूरी ससुराल पहुँचती है, तो देखती है कि ससुराल उसकी माँ की आशा के विरुद्ध है | कस्तूरी के पीहर में चूल्हा जलने लगा और कस्तूरी के ससुराल में चूल्हे की आग को कर्ज़ की आग निगल गई। साहसी कस्तूरी कहती है कि "मैं

[149] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 9

[150] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 16

दोनों जगहों की पन निभाऊँगी, यही मेरा पराक्रम होगा। वैसे चाची से कौन कहे कि यहाँ भी गुड़ की भेली खरीदने की कूव्वत नहीं बची। तेरा दामाद जमींदार और साहूकार के डर से दिल्ली भाग गया था, क्योंकि आठ सौ चाँदी के कर्जदारों का कर्ज गर्दन तोड़े दे रहा था। जिस रकम ने मुझे सुहागिन बनाया, वही अब भूखों मार डालने पर आमादा है। चूल्हा जले, बस चूल्हा इसलिए ही जला देती हूँ। भूखे रहना ही नहीं, भूखे दिखना भी तो आदमी की तौहीन है। सो, बस कभी शर्म आती है, कभी दुःख होता है और कभी गुस्सा बेजार कर डालता है[151]।"

धनाढ्य पति कर्ज़ और लगान के भय से घर छोड़ भाग निकला। कस्तूरी के कंधों पर बूढ़े ससुर व गिरवी रखे खेतों की जिम्मेदारी उसके जीवन में अशान्ति फलाने लगे । कस्तूरी माँ बनती है, पहली सतान पुत्र रत्न पदा होता है। नानी, मामा को (छोछक) नेग देने में कोई कष्ट न हो, इसलिये वह मर जाता है। धीरे-धीरे समय बीतता है| कस्तूरी दिन-रात पुरुषों की भाँति खेतो में काम करती, स्वयं भूखी रहकर ससुर का पेट भरती। स्त्री के चरित्र को लेकर पुरुष सदा ही आशंकित रहता है। कस्तूरी की गृहस्थी की हालत धीरे-धीरे सुधर ही रही थी। पति हीरालाल कस्तूरी के चरित्र पर शक करता है, किन्तु कस्तूरी कोई साधारण नारी नहीं, वह एक संघर्षशील कर्मठ नारी है। उसने कोई अग्नि परीक्षा नहीं दी। हीरालाल कहता है- "चल मैं गंगा का कोण बनाता हूँ, तू उसमें खड़ी होकर, सौगन्ध खा कि इस

[151] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 21

बनिया के बेटे से तेरा कोई संबंध नहीं? कस्तूरी कहती है- है संबंध, वह धीमे से बोली। 'रखैल का' बोल रखैल का। बोल दे हाँ, कहते हुए उनकी लंबी काया थरथराने लगी और होंठ एंठने लगे। हाँ रियाया का[152]।" बेटे की मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद मैत्रेयी का जन्म होता है। जन्मोत्सव धूम-धाम से मनाया गया। पैंतीस वर्ष की उम्र में पीलिया रोग से पति का देहान्त हो गया। कस्तूरी विधवा हो गई। अपनी इस वेदना को व्यक्त करती हुई कस्तूरी कहती है कि "मैंने ब्याह नहीं करना चाहा था, किसी ने सुनी मेरी बात? मैं भाई के ब्याह के लिए बदले में किसी बूढ़े के साथ नहीं जाना चाहती थी, बस चुपके से बेच दिया मुझे। आज विधवा हो गई, मेरे साथ कौन है? चिन्ता है किसी को[153]?" 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा एक स्त्री द्वारा दूसरी स्त्री के नजरिए से लिखी गई आत्मकथा है। गुलाम भारत में जहाँ अंग्रेजों के अत्याचार ने भारतीय जनता की कमर तोड़ रखी थी। वहीं, दूसरी ओर जमींदार, साहूकारों द्वारा लगान वसूली के तौर -तरीकों से ग्रामीण जनता परेशान थी। सोने की चिड़िया कहलाने वाले भारत देश में आज मानवीयता, अत्याचारों की सभी सीमाएँ लांघकर चर्मोत्कर्ष तक पहुँच चुकी थी। कर्ज़ चुकाने, 'सुरसा मुख लगान' से अपने को बचाने की एवज में घर की बेटियों, बहनों तक को बेचा जा रहा था। क्या ? स्त्री की इज़्जत इतनी सस्ती है कि कोई भी उसकी कीमत चुका

[152] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 23
[153] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 31

सके। नहीं बिल्कुल नहीं, किन्तु इस आत्मकथा में ऐसे कई उदाहरण है, जो स्त्री देह व्यापार की कटु सच्चाईयों से अवगत करवाते हैं। उन्हीं ब़दकिस्मत लड़कियों में शामिल थी कस्तूरी, उसे भी इस व्यापार मण्डी में विवाह के नाम पर बेच दिया जाता है। जिस समाज में 'खेती दगा दे जाए, तो बेटी ही काम आती है' कि मानसिकता काम कर रही थी। आत्मकथा में लिखा भी गया है कि "गाय मरे अभागे की, बेटी मरे सुभागे की[154]।"

धीरे-धीरे समय गुजरता गया। देश की आजादी के लिए युद्ध हुआ और भारत स्वतंत्र हो गया, लेकिन अब भी नए भारत में स्त्रियों को वह सम्मान नहीं मिल पाया। अपनी जमीनों की मौसीदारी के लिए नए जमाने की नई साहूकारी नीति लागू की गई। दस गुना लगान भरो और अपनी जमीनों के मालिक बनो, स्वार्थ की पराकाष्ठा परवान चढ़ती जा रही थी। प्रेमसिहं जाट सबसे पहले लगान चुकाने के लिए अपनी ही बहन को ऊँचे दाम में रोहतक बेच आता है। शर्म आती है हमें आज ऐसे पुरुष प्रधान समाज पर, जो स्त्रियों को बेचकर धनाढ्य बनते हैं। "नम्बरदार कहा करते थे, देश आजाद हो जाएगा, तो रामराज आ जाएगा। पर सिवा मौरूसीदार के पट्टे के कुछ न बदला। बेचने वाला वहीं रहा, खरीदने वाला वहीं रहा। बिकने वाली चीजों में गाय, बैल-भैंस, जेवर, अनाज और लड़कियाँ रहीं[155]।"

---

[154] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 13

[155] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसारम, पृ0 113

स्वतंत्रता की लहर ने स्त्री-शिक्षा के नये द्वार खोले। कस्तूरी गृहस्थी को सँवारने के लिए मीलों दूर का सफर तय कर अध्ययन करने लगी। बूढ़े ससुर बेटी व घर संभालने लगे। मैत्रेयी धीरे-धीरे बड़ी हो ही रही थी कि फिर काल का कहर कस्तूरी के परिवार पर बरसा और ससुर का देहान्त हो गया। कस्तूरी ने संघर्षों से गुजरते हुए बेटी को पढ़ाया-लिखाया, ताकि बेटी बड़ी होकर स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर बने लेकिन मैत्रेयी अध्ययन के लिए जहाँ भी जाती, वहाँ पर उसका देह शोषण होने लगता था। लड़की होने की सजा वह जगह-जगह पाती है। इन दुर्गम राहों से गुजरते हुए मैत्रेयी एम.ए. पास कर लेती है, किन्तु माँ की इच्छा के विरुद्ध जाकर माँ से अपनी सुरक्षा के उपाय के तौर पर अपने विवाह की बात कहती है। शिक्षित बेटी के मुख से विवाह की बात सुनकर कस्तूरी हैरान हो जाती है। बेटी को समझाते हुए कहती है कि "तू मुझे गलत समझ रही है, मेरा मतलब यह नहीं कि विवाह बुरी चीज़ है। यह औरत के लिए ऐसे बंधन पैदा करता है, जो जीवन-भर कसे रहते है। पति के रहने पर भी और न रहने पर भी। पति की पसन्द-नापसन्द दोनों और त पर ही भारी पड़ती है। तूने किसी विधुर को विधवा की तरह रहते देखा है? किसी छोड़ी हुई औरत की तरह उसके पुरुष का अपमान होता है? और ये बातें अशिक्षित लोगों में तो अत्याचार की हद तक जा पहुँचती है[156]।" इस आत्मकथा में परतंत्र भारत में स्त्री की सामाजिक स्थिति, गोरों के अत्याचार,

[156] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसारम, पृ0 62

जमींदारों के शोषण, शहरी एवं ग्रामीण परिवेश, मूल्यों का दोहन पग-पग पर परिलक्षित होता है। अनमेल विवाह के साये से स्वयं को बचाने के लिए कस्तूरी विद्रोहात्मक स्वर से कहती है- "मैं ब्याह नहीं करुंगी[157]।" पुरातन मूल्यों, जर्जर रूढ़ियों, सामाजिक विधानों को तोड़ती कस्तूरी पढ़ना चाहती है। कलम-खड़िया जैसे साधन जुटा पाना उस जैसी लड़की के भाग्य में नहीं है। अँगुलियों को कलम, धरती को कागज़ बनाकर कस्तूरी मात्रा लगाकर शब्द बनाना सीख गई। साक्षर होती कस्तूरी अपनी माँ की चिन्ता का कारण बनती जा रही थी। माँ ने कहा था- "कभी पीहर चिट्ठी मत डालना। उसने वचन निभाया। अगर ऐसी ही फालतू कसम कोई दे दे, तो पढ़ाई-लिखाई का मतलब क्या होगा? वह दुविधा में फँसने लगी। जाल में बिंधे पंछी की तरह फड़फड़ाती हुई[158]।" विवाह न करने की बात कस्तूरी के मुख से सुनकर माँ उसे मारती पीटती है, गालियाँ देती है, कहती हैं कि "मेरी सौत, तू खानदान की जड़ में दीमक, हम सबका सफाया कर देगी। हरजाई, कौन-सा यार तुझे ब्याह होकर विदा होने से रोक रहा है[159]?" कस्तूरी अपने मन की बात माँ से कहती है, वह समझती है कि भाभी तो पराई है, किन्तु माँ तो उसकी अपनी है। उसकी वेदना को समझेगी, वह माँ से कहती हैं- "मैं ब्याह करने से नहीं डरती, सती होने से डरती हूँ, जलकर मर जाने का कैसा व्रत? भस्म हो जाना भी

[157] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 9
[158] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ रखिए, पृ0 30
[159] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 11

कोई धर्म है? मरने के बाद लोग पूजें, इसलिए जिन्दगी खत्म कर दो[160]?“ कस्तूरी स्त्री की निरक्षरता को ही उसका दुर्भाग्य मानती है। विधवा जीवन के पश्चात् शिक्षा के उजाले में आने के लिए खेत-खलिहान, अपाहिज ससुर, नन्हीं बच्ची, लोक-लाज को छोड़कर लोगों की व्यंग्यवाणी सुनते हुए झोला लटकाए स्कूल की ओर चलती जा रही है। कस्तूरी की मनोस्थिति का चित्रण इस संदर्भ द्वारा स्पष्ट समझा जा सकता है- “स्कूल जाने वाली झोला लटकाए औरत को भौंचक होकर सबने देखा। वह इस कदर परेशान हुई कि किसी आदमी को तो क्या, रास्ते के कंकड़-पत्थर और चढ़ाव-उतार तक न देख पाई । ठोकर लगी, मुँह के बल गिरी। झेंपती हुई स्त्री चोट और दर्द भूलकर चुपके से उठती, धूल झाड़कर धीमे से खड़ी होती। आसपास तमाशगीर होते। हँसते-मुस्कारते बूढ़े, जवान और बच्चे औरतें घूँघट में कैसा चेहरा लिये रहतीं, पता न चलता। बस इतना पता चल गया कि उसे लोगों ने पागल मान लिया है[161]।“ पढ़-लिखकर जहाँ कस्तूरी आत्मनिर्भर एवं ज्ञान की देवी का खिताब पाती है, वहीं दूसरी तरफ बेटी मैत्रेयी के प्रति ‘मातृत्व-स्नेह’ देने में असफल रह जाती है। शायद इसीलिए मैत्रेयी के लिए कस्तूरी (माँ)- ‘समाज कल्याणी माँ’, ‘महिला-मंगली माँ’, खादी वर्दी पहनने वाली माँ, समाज सेविका माँ ही बनी रहती है। कस्तूरी एक ऐसी विद्रोहिणी नारी है जिसने कष्ट

[160] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 21
[161] कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ0 32

सहे, लेकिन हार नहीं मानी। वह स्वयं तो अपने 'अनमेल-विवाह' को होने से नहीं रोक पाई, किन्तु अपनी ही ननद विद्या बीबी द्वारा मात्र 14 वर्ष की बेटी का ब्याह 44 वर्ष के अधेड़ पुरुष से किए जाने पर भात माँगने घर आई ननद को गुस्से से भरकर खूब खरी-खोटी सुनाते हुए कहती हैं कि "चौदह वर्ष की लड़की के लिए चौवालीस का आदमी ढूढ़ लिया, बड़ा तीर मार लिया! भात माँगने आई हो, शर्म नहीं आती? इस आत्मकथा में गाँवों का विघटन भी एक समस्या के रूप में उभरा है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत देश ने आर्थिक, वैज्ञानिक, भौगोलिक तरक्की की है। नए-नए कल-कारखानें, उद्योग-धंधे, धुंआ उगलती फैक्ट्रियाँ स्थापित हुई है। रोजगार के अवसर खुले हैं लेकिन इसमें भी संदेह नहीं है कि ग्रामीण युवा रोजगार की तलाश में अपने गाँवों, हरे-भरे खेतों एवं परिजनों को छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर गए। देश की उन्नति से विकास की राह आसान हुई है लेकिन आज लोगों के हृदय में आपसी प्रेमभाव, भाईचारे की भावना कमजोर भी हुई है। आज हम धन से तो अमीर हो गए, किन्तु मानवता एवं रिश्तों से कंगाल भी हुए हैं। वर्तमान मूल्यों में स्वार्थ एवं स्वहित की भावना प्रबल हुई हैं। कस्तूरी के जीवन में संघर्ष का दौर काल के पहिये की तरह घूमता रहा। समय के साथ-साथ समाज में परिवर्तन होने लगा। समाज में राजनीतिक वर्चस्व बढ़ने लगा। नई सरकारें बनी पुरानी सारी योजनाएँ नई सरकार ने रद्द कर दी। 'महिला मंगल' विभाग को खत्म करने के फ़रमान जारी हुए। राजनीतिक और प्रशासनिक

कार्यालयों से ग्राम सेविका और सहायक विकास अधिकारी (महिला) जैसे पद खारिज कर दिए गए। कस्तूरी एवं अन्य ग्राम सेविकाओं ने 'महिला मंगल' को बचाने के लिए कस्तूरी के नेतृत्व में आन्दोलन किए। सरकार के कड़े तेवर ने महिला मंगल को खण्ड-खण्ड कर डाला। कस्तूरी जेल गई। कई शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ झेली, किन्तु हार नहीं मानी। हुक्मनामे के बाद सान्त्वना और शान्ति के लिए 'महिला मंगल' की महिला कर्मचारियों को स्वास्थ्य विभाग में नियुक्त कर भेज दिया गया। ट्रेनिंग दी गयी। प्रशिक्षण पाकर कस्तूरी को पी.एच.सी. केन्द्र पर भेज दिया गया, किन्तु कस्तूरी की ईमानदारी उसे कहीं भी एक जगह टिकने नहीं देती। जहाँ भी जाती वहाँ के डॉक्टरों एवं कम्पाउण्डरों के लिए आँखों का काँटा बनी रही। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा स्त्री विमर्श की बेमिसाल रचना है। यह आत्मकथा स्त्री-चेतना, स्त्री-अस्मिता, स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री-संघर्षशीलता एवं स्त्री के सशक्तीकरण की दास्तां है। अपनी ईमानदारी, समाज के प्रति एक नागरिक होने के कर्तव्यों को निभाने वाली संघर्षशील नारी की यह गाथा है, जिसने अपने जीवन में सघंर्षों, कठिनाईयों से कमी हार नहीं मानी। यह आत्मकथा स्त्री सशक्तीकरण की एक ऐसी इबारत प्रस्तुत करती है, जो समाज के लिए प्रेरणास्पद है।

2.8 **बेबी हालदार-आलो आँधरि**-2002

आलो आँधरि बेबी हालदार की आत्मकथा बंगाली महिला के जीवन का संघर्ष की कथा है। यह आत्मकथा बेबी हालदार द्वारा लिखित 'आलो आंधरि' 2002 में बंग्ला भाषा में लिखी गई। इस आत्मकथा का हिन्दी में अनुवाद प्रबोध कुमार ने किया। इसमें आलो आंधरि का अर्थ अंधेरा उजाला अर्थात् अंधेरे में उजाला है। बेबी का विवाह छोटी उम्र में उससे इस में दुगनी उम्र व्यक्ति से कर दिया जाता है। बेबी के पिता जन्मू-कश्मीर में नौकरी करते थे। बेबी हालदार के पिता अपने परिवार के प्रति उदासीन थे। वह अपने घर भी कभी-कभी ही पैसा भेजते थे। इस बेबी हालदार की माँ आर्थिक तंगी के कारण अपने पति का घर छोड़ देती है। इस कारण उसका विवाह भी काफी कम उम्र में अपने से दुगनी उम्र के व्यक्ति के साथ विवाह के बाद पच्चीस वर्ष की उम्र तक वह तीन बच्चों की माँ बन जाती है। अब वह भी अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर अपने बच्चों को लेकर फरीदाबाद में चली जाती है। वहां पर वह एक किराये के मकान में रहती है। अपने बच्चों का पालन-पोषण घर-घर जाकर झाड़ू-पोछा बर्तन साफ कर करके उनको पालती है। अब वह अपने बच्चों के लिए घरों का ही काम करके अपने और अपने बच्चों का जीवन व्यतीत करती है। बेबी हालदार की इस आत्मकथा में ही बताया गया है कि उसकी मुख्य समस्या अपने बच्चों के पालन-पोषण की थी। वह नौकरी की भी तलाश करती है। अब बेबी की तातुश (प्रबोध रंजन राय) के घर आठ सौ रूपये महीने पर घरेलू नौकरानी का काम करने लगती है। वह व्यक्ति बेबी हालदार

को अपनी बेटी की तरह मानते है। वह भी बहुत ही ईमानदार और लगन के साथ काम करती है। वह बेबी हालदार पुस्तकों के प्रति उसकी रूचि की प्रशंसा करते हैं । तातुश ने बेबी को उसकी जिज्ञासा और रूचि को पहचानकर उसे लिखने के लिए प्रेरित किया है। अब इस तरह वह पढ़ने लिखने की रूचि धीरे-धीरे लेखिका की आदम बन गई और उसे लिखने में भी बहुत आनन्द आने लगा है। जब वह लेखिका एक दिन काम से घर लौटी तो उसने देखा कि उसका मकान टूटा हुआ है। उसके घर का सामान बाहर गिरा पड़ा है। अब वह बहुत फूट-फूट कर रो पड़ती है। उस दिन वह रात को अपने बच्चों के साथ खुले आसमान के नीचे बैठी रहती है। उसके मालिक तातुश को उसके बेघर होने की खबर लगती है, तब वह उसे अपने घर में रहने के लिए एक कमरा दे देते है। वहां पर तातुश के घर आश्रय पाकर बेबी की गृहस्थी ठीक से चलने लगती है। अब उसकी घर गृहस्थी अच्छी प्रकार से चल रही है। तातुश बेबी को लेखन के लिए उकसाते और उसका हौसला बढ़ाते रहते हैं। उनसे प्रेरित होकर बेबी ने अपने जीवन की घटनाओं को कागज पर उतारना शुरू कर दिया। तातुश ने अपने मित्रों से बेबी के लेखन की चर्चा की। उन उसके लिखे लेखों के कुछ अंश पढ़ने के लिए उनके पास भेज भी दिए गए। लोगों को उसके लेख पसंद आए। तब दिन-प्रतिदिन लेखिका का उत्साह बढ़ने लगा और वह अनवरत लिखने लगी। तातुश की छत्रछाया में उनके दिशा-निर्देश से वह एक लेखिका बन गई। बेबी हालदार परिवार, समाज तथा पति द्वारा उपेक्षित एक कर्मठ महिला है। वह कम ही पढ़ी-लिखी थी। उसकी पढ़ाई आठवीं कक्षा ही

पास की थी। कम पढ़ी-लिखी होते हुए भी अपनी लगन और ईमानदार की लगन से उन्होंने समाज में अपनी अलग पहचान बनाई। बेबी हालदार ने अपने जीवन संघर्ष की मार को सहन किया था। अपने जीवन के संघर्षों को ही कागज पर बड़ी बारीकी से उतारती गई। वह ईमानदारी से अपने अच्छे कार्य में लगी रही। आखिर कार बिना पुरूष के भी अपने जीवन को जी कर दिखाया था। आज का युग हर क्षेत्र जागरण और चेतना है। आज की नारी वह नारी नहीं रह गयी है। जो पहले पचास वर्ष पहले थी आज उसके जीवन व्यवहार और रहने के तौर तरीकों में अंतर आ गया है। परिवार समाज तथा साहित्य जगत में लेखिकाओं ने जो कटु अनुभव उन्हें हुए, उनका वर्णन अपनी आत्मकथाओं में निर्भीकता से किया है। इन लेखिकाओं ने समाज के उस वर्ग को चिह्नित किया है जो नारी को मूल अधिकारों से वंचित करते हुए यह स्वीकार नहीं कर पाते कि स्त्री को समान मानकर उसके विचारों का आदर करना चाहिए। आज के समाज में अनेक सामाजिक मान्यता टूटती नजर आ रही है। उनके स्थान पर नई मान्यताओं ने जन्म लिया है। रीति-रिवाजों में बंधी नारी के अंदर इन परम्पराओं से निकलने की छटपटाहट इनकी आत्मकथाओं में दिखाई देती है। महिलाओं ने आत्मकथा के माध्यम से साहित्य जगत में दुःख और संघर्ष को लिखा है। उनका लेखन सत्य को सत्य जैसा ही दिखाता है, कुछ भी नहीं छिपाता। इसकी आत्मकथा के माध्यम से स्त्री जीवन से जुड़े अनेक अनकहे कोने सामने रखे। लेखिका ने अपने लिखे का लोहा मनवाया है, इसलिए समाज में आज यह चर्चित है। आत्मकथा में लेखिका एक ओर अपने

आत्म संघर्ष को पाठक के समक्ष रखती है, तो दूसरी तरफ उन महिलाओं को जो इस समाज में अत्याचारों को सहनकर चुप रहती है, उनको इन आत्मकथाओं के द्वारा अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती है। नारी ने आज कलम को हथियार बनाकर लड़ना सीख लिया है और अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गई है।

2.9 **रमणिका गुप्ता-हादसे**-2005

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा भाग-1 'हादसे' 2005 इ. में हजारीबाग के संघर्षों के बाद हुए संघर्षों की अपराजेय की गाथा है, जिसमें बिहार (झारखण्ड) के कोयला खदानों के संघर्ष, सामन्तवाद और लोकतंत्र के खूनी द्वन्द्व, राजनीतिक चालबाजियाँ, आदिवासी महिलाओं का शोषण, उत्पीड़न, महिला यौन-शोषण, भू-माफियाओं, मिल मालिकों, राजनेताओं की मिली भगत, कालाबाजारियों की पोल खोलती है। वह लिखती हैं कि "जिस जद्दोजहद से हम गुजरे उसे आज भी याद कर मैं सिहर उठती हूँ लेकिन इस विश्वास से रोमांचित हो उठती हूँ कि मजदूरों की संगठन शक्ति कामयाब हुई। बस इच्छा शक्ति का होना जरुरी होता है ऐसे समय में"[162]। वह आन्दोलन करती है, जेल जाती है, किन्तु सरकार के सामने झुकती नहीं है| कोयला खदानों का राष्ट्रीयकरण करवाने, मजदूरों, कामगारों, बेरोजगारों को रोजगार दिलवाने में अन्ततः सफल हो जाती है। पटियाला के क्षत्रिय (राजपूत) बड़े मिलिट्री अफसर की बेटी बचपन से ही अपने मन की करने वाली

[162] हादसे, रमणिका गुप्ता, कोयले की बौछारों से आकाश 'करिया' हो गया, पृ0 129

हठीली, जिद्दी लड़की जो सामन्ती युग की कसौटियों को चुनौती देती है। परिवार के विरुद्ध जाकर बनिया (राकेश गुप्ता) से प्रेम-विवाह करती है। पति के साथ बिहार (झारखण्ड) चली जाती है। किसी एक चौखट से बंधकर रहना स्वीकार नहीं करती। अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश करते हुए पति से विद्रोह करके मजदूरों, कामगारों, आदिवासियों के मध्य उनकी आवाज़ बनती है। उनको हक दिलवाने के लिए अपना सम्पूर्ण सुखी वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन छोड़कर उन्हीं के बीच रहकर मालिकों व शोषकों के विरोध में पीड़ितों की आवाज बनकर उनकी मुक्ति के लिए अभियान चलाती है। यह आत्मकथा रमणिका गुप्ता के बोल्ड-लेखन की झाँकी भी है। मजदूरों के हित के लिए संघर्ष करती रमणिका गुप्ता लिखती हैं - "मैं अपना दुःख-सुख मजदूरों के दुःख-सुख में महसूस करती थी इसलिए उनकी तकलीफ को देखकर मेरा गुस्सा बढ़ता था। मैं गुस्से में रोने लगती हूँ और फिर संघर्ष शुरु कर देती हूँ और कड़े-से-कड़े मुकाबले के लिए पूरी तरह तैयार हो जाती हूँ। मुकाबले होते भी थे बहुत तगड़े[163]।"

'हादसे' आत्मकथा एक स्त्री की नहीं अपितु राजनैतिक कार्यकर्त्री के रूप में उभरती महिला की कहानी है। भारतीय राजनीति में राजनीति का गढ़ रहे बिहार की राजनीतिक व्यवस्था को जड़ से हिला देने वाली साहसिक क्रान्तिकारी महिला की प्रेरणास्पद गाथा भी। इसी सदंर्भ में वह लिखती हैं कि "कांग्रेस के बहुत से नेता

[163] हादसे, रमणिका गुप्ता, केदला की हडतालों पर सौदेबाजी, पृ0 132

मुझसे चिढ़ते थे क्योंकि मैंने उनकी कभी परवाह नहीं की थी। वहाँ लोग स्त्री कार्यकर्ताओं को अपना कलेवा मानते थे जिसे भूख लगने पर खाने का एक स्वर्जित जन्मसिद्ध अधिकार उन्होंने प्राप्त कर रखा था। उनकी नजर में बिना किसी पुरुष नेता-वृक्ष का सहारा लिए महिला नेता-लता पनप और बढ़ नहीं सकती थी और मैं लता बनने को तैयार नहीं थी[164]।" सन् 1947 भारत को स्वराज प्राप्त हो जाने के पश्चात् पाकिस्तान का गठन हुआ| साथ ही शुरु हुई लोगों की अदला बदली| मुस्लिम पाकिस्तान भेजे जाने लगे और पाकिस्तान में बसे हिन्दू परिवारों को भारत लाने का कार्य राजनीतिक तौर पर हो रहा था। लेखिका मुस्लिम महिलाओं के हक के लिए लड़ाई करती है। खुलेआम निडर होकर मंच से सरकारी अफसरों पर आरोप लगाती है। कहती हैं "ये जो यहाँ भाषण दे रहे है और लड़कियों को खोजने का आश्वासन दे रहे हैं सबके सब झठू बोलते है। इनके घरों में ही तो लड़कियाँ हैं। इन्हीं लोगों के घरों में जाइए, एक-एक के यहाँ पाँच-पाँच, दस-दस लड़कियाँ मिल जाएँगी"[165]। वह आजादी के लिए संघर्ष करने वाले गांधी जी से प्रभावित होती है। युवा हो रही लेखिका के भीतर स्वतंत्र जीने की चाह तेज होती जाती है। गांधी जी के प्रभाव से प्रभावित होकर खादी वस्त्र पहनना शुरु करती है। खादी का भी अपना रुतबा है, जिसे केवल वही धारण कर सकता है, जो जन कल्याण के मार्ग पर चलने का प्रण लेता है। बकौल रमणिका गुप्ता- "राष्ट्र की

[164] हादसे, रमणिका गुप्ता, स्वयं सिद्धा होने का संकल्प, पृ0 27

[165] हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ0 21

आजादी की लड़ाई और गांधीजी के प्रभाव में मैंने 15-16 वर्ष की उम्र में ही खादी पहनना शुरु कर दी थी। बचपन से ही मैं खुदसर थी, पंजाबी भाषा में कहूँ तो 'आपहुदरी' थी। इसका मुझे कभी कोई मलाल नहीं रहा। यह प्रवृत्ति, यह ज़िद अगर मुझमें न होती तो संभवतः मैं कहीं गृहिणी बनी रोटियाँ पका-पकाकर, आठ-दस बच्चों को खिलाने में ही सन्तुष्ट रही होती। यदि राजनीति में आई भी होती तो या तो कहीं लता बन सहारे खोजती हुई भटक गई होती या फिर मेरे इर्द-गिर्द का पुरुष समाज मुझे लील गया होता। जिस मुकाम पर मैं आज हूँ, वहाँ नहीं होती[166]।" सन् 1960 में रमणिका गुप्ता पति के साथ धनबाद आती है। समाज सेवा करते हुए सक्रिय राजनीति में प्रवेश करती है। भारत समाज कल्याण, भारत सेवक समाज के तहत कई सस्थाओं का संचालन करते हुए महिला सिलाई प्रशिक्षण, बालवाड़ी जेसै कई कार्यों को करती है। महिलाओं को आत्म-निर्भर बनाने, स्वावलम्बी बनाने के लिए पति एवं बच्चों के साथ कानपुर (पति का तबादला शहर) जाना तक अस्वीकार करती है। कांग्रेस से जुड़कर समाज सेवा के कार्य करती है। उसी समय सन् 1967 में बिहार में संविद की सरकार बनती है और जल्दी टूट भी जाती है। कांग्रेस छोड़कर संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो जाती है, किन्तु राजनीति के क्षेत्र में महिला कार्यकर्ता के रूप में उनका शोषण होता है और वे कांग्रेस से त्याग पत्र दे देती है, किन्तु अपने संकल्प, कर्तव्य से

[166] हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ0 17

नहीं| वह लिखती हैं कि "कांग्रेस पार्टी में केवल लताएँ ही फुनगी तक पहुँच सकती हैं। जो महिला स्वयं पेड़ बनने की क्षमता रखती हो उसे काट दिए जाने की मुहिम चलाई जाती है और मैं लता बनने को तैयार नहीं, चूँकि मैं खुद निर्णय लेने में सक्षम हूँ। पति, पिता, भाई, बेटा या प्रेमी का सहारा लेकर बढ़ना मेरी आदत नहीं, इसलिए कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से मेरा इस्तीफा स्वीकार करें। मैं अपना रास्ता खुद खोज लूगी या रास्ता ही मुझे खोज लेगा[167]।" लेखिका के राजनीतिक जीवन को नया मोड़ देने में कच्छ यात्रा का विशेष योगदान रहा है। यह यात्रा उनके जीवन में राजनीति के नए रास्ते खोलती है, वहीं दूसरी ओर प्रेम में घनिष्टता, गम्भीरता, अति संवेदनशील प्रसंग को भी जोड़ती हैं। भारत सरकार के 'कंजरकोट' और 'छाड़वेट' इलाके पाकिस्तान को देने के विरोध में लेखिका राष्ट्रीय पैमाने पर सत्याग्रह करती है | भारत सरकार के विरोध में नारे लगाती "कंजरकोट हमारा है- छाड़वेट हमारा है भारत सरकार निकम्मी है"- कितनी लम्बी जेल तुम्हारी देख लिया है-देखेंगे[168]।" उनके इस फैसले से लोकप्रियता की चाह रखने वाले राजनेता, विधायकगण राजनैतिक हथकंडे अपनाते हुए सत्याग्रहियों का मनोबल तोड़ने लगे। मात्र ग्यारह सत्याग्रहियों के साथ लेखिका पद यात्रा, नारे लगाते, नुक्कड़ सभाएँ करते, चंदा माँगकर भोजन व्यवस्था करते, तो कभी भूखे रहकर

[167] हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ-यात्रा, पृ0 30

[168] हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ-यात्रा, पृ0 46

कष्ट झेलते हुए कच्छ की दलदली ज़मीन पर पहले पग रखने की शर्त जीत लेती है। वह लिखती हैं कि "मैं महिला के नाते नहीं, एक कार्यकर्ता के रूप में जा रही हूँ-आप मुझे महिला के दायरे में शामिल कर महिलाओं को कमजोर साबित करने की कोशिश मत कीजिए। रास्ते में जो कुछ भी घटेगा वह हम सबके साथ घटेगा। एक बात और मैं आपके साथ जाऊँ तो आपकी परिभाषा के अनुसार तब भी मैं 'महिला' ही रहूँगी न। आश्चर्य है आप भी स्त्री-पुरुष के दायरे में सोचते हैं, जहाँ तक शर्त की बात है, तो रही शर्त। सच मानिए ठाकुरजी मैं अपने जत्थे के साथ आपका स्वागत करने के लिए आप से पहले वहाँ हाजिर रहूँगी[169]।" कच्छ भूमि पर आन्दोलनकारियों को वहाँ की सरकार के तीखे रुख से गुजरना पड़ा, जेल गये, गिरफ्तारियाँ दी और फिर एक बड़ी घटना ससंद में जूता फेंकना घटित हुई, वहीं पर लेखिका को वहाँ के सत्याग्रही रहे लाड़लीमोहन से प्रेम हो जाता है। राजनीति में उनके पुरुष मित्रों से मेलजोल, नजदीकियों पर आरोप लगाए जाते हैं। पति के साथ सबंध टूटने की कगार तक पहुँच जाते है, किन्तु अपने अस्तित्व की स्वयं रक्षा करते हुए स्त्री आत्म-सम्मान को सुरक्षित बनाए रखती है, वह लिखती हैं कि "मैं जो हूँ, खुली किताब के रूप में सामने हूँ। मानो-न-मानो पर मेरा अस्तित्व

[169] हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ-यात्रा, पृ0 31-32

है और रहेगा। इस विश्वास को लेकर चलती रही हूँ, तभी तो सब ओर से हमले भी मैं झेल पाई[170]।"

राजनीति में महिलाओं का शोषण होता है। उनके आत्म-सम्मान को तोड़ने की कोशिश राजनीतिक पार्टियों में आम बात है, स्त्री को हिम्मत रखनी होगी अपनी ताकत स्वयं बनना होगा, नहीं तो ये राजनीति के ठेकेदार उन्हें पनपने नहीं देगें । इसी सदंर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "राजनीति और समाज-सेवा में आत्मविश्वास, हौंसला, निडरता और हठ जरुरी चीजें हैं। एक औरत को आगे बढ़ने के लिए 'थेथर' होना भी जरुरी है। 'थेथर' का मतलब संवेदनारहित नहीं, बल्कि पूर्णतया संवेदनशील होते हुए विपरीत स्थितियों में डटे रहना है"[171]। सन् 1968 में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की तरफ से कांग्रेस के विरोध में मांडू से चुनाव लड़ती है, वहाँ पर 700 वोटों से हार जाती है, किन्तु आदिवासियों के बीच एक नई पहचान 'रानी माँ', 'गुप्ता रानी' के नाम से पहचानी जाती है। रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' पूंजीपति व सर्वहारा के नित नए सघंर्षों की कहानी है। सामन्ती कुरीतियों को उजागर करती उनसे दुमुँह होती खुली मीटिंगे करती है। अपनी बुलन्द निर्भीक आवाज़ से विरोध प्रकट करते हुए बिहार में सामन्ती व्यवस्था, सघंर्षों को साहस से मात देती है। सरकारी अफसर की यह बेटी (रमणिका गुप्ता)

---

[170] हादसे, रमणिका गुप्ता, अपराण-बोध और आत्मदया की ग्रंथियाँ, 54

[171] हादसे, रमणिका गुप्ता, अपराध बोध और आत्महया की ग्रंथियाँ, पृ0 54

एवं बिहार केन्द्रीय उपमुख्य आयुक्त की यह पत्नी बिहार के अशिक्षित, पिछड़े, बेरोजगारी को झेलते हुए, भुखमरी का शिकार होते असहाय मजदूरों को उनके हक दिलाने के लिए शासन-प्रशासन, कानून से डटकर मुकाबला करती है। इस आत्मकथा को पढ़ने के उपरान्त मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है कि लेखिका पुरुषप्रधान समाज द्वारा स्त्री के लिए खींची गई सभी लक्ष्मण रेखाएँ उलांघ जाती है। समाज के दबे कुचले वर्ग के हितार्थ के लिए अपना सुखी वैवाहिक जीवन दाँव पर लगाकर राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रहते हुए संसद तक पहुँच जाती है। एक सफल राजनीतिक, कटिबद्ध महिला कार्यकर्ता के रूप में अपनी स्वच्छन्द पहचान बनाती है। अन्तरिक्ष यात्रा हो या हिमालय पर्वत की ऊँची चढ़ाई, वैज्ञानिक क्षेत्र हो या शिक्षा का क्षेत्र महिलाओं की उपस्थित बरकरार है।

2.10 **मन्नू भण्डारी-एक कहानी यह भी**-2007

'एक कहानी यह भी' (2007 ई.) हिंदी साहित्य की एक ऐसी स्त्री आत्मकथात्मक कृति है, जिसमें स्त्री जीवन की घुटन, पीड़ा, अन्याय, पति की संकुचित मानसिकता, ववाहिक जीवन के दर्द को बयां किया गया है। यह एक दर्दनाक कहानी है, जिसमें लेखिका के भोगे हुए जीवन का सच यथार्थ के धरातल पर प्रकट हुआ है।

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी ने अपने बाल्यकाल से लेकर लेखिका बनने के मार्ग में आने वाली घटनाओं का उल्लेख किया है। इस आत्मकथा में लेखिका ने अपने कमजोर आत्मविश्वास को हीनता-ग्रन्थि के संदर्भ में रखा

है। मन्नू भण्डारी ने अपने जीवन काल में कई कहानियाँ, उपन्यास, नाटक इत्यादि लिखें। राजनीतिक चेतना से सम्पन्न 'महाभोज' आौर 'आपका बंटी' उनके द्वारा लिखे गए सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से एक है। एक सफल लेखिका के तौर पर हिंदी साहित्य जगत में उनकी अपनी स्वच्छन्द पहचान है। वह किसी कुंठित लेखनी का करिश्मा नहीं। 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी एक स्त्री के संघर्ष, पीड़ा एवं स्त्री-अस्मिता, स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री-स्वावलम्बन को पिरोए स्त्री-विमर्श के अनेक आयामों को प्रस्तुत करती है। मध्यप्रदेश के भानपुरा में जन्मी मन्नू भण्डारी का जन्म एक शिक्षित एवं मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। पाँच भाई-बहनों के इस परिवार में मन्नू भण्डारी सबसे छोटी थी। इन्दौर शहर में रहते हुए पिता को एक बहुत बड़े आर्थिक सकंट से गुजरना पड़ा और पूरा परिवार अजमेर शहर में आ बसता है। आर्थिक सकंट से गुजरने के कारण विशिष्टता की चाह रखने वाले पिता के मन में कुंठाओं के भाव भर गए थे। पिता के भय से कांपता पूरा परिवार, पिता के क्रोध का सामना करती मन्नू की माँ, जो धरती के समान गम्भीर एवं धैर्यवान थी। पिता के स्वभाव से परिचित बिना कुछ कहे सब कुछ सहती रहती थीं। महत्त्वाकांक्षी पिता की नसीहतें एवं उपेक्षाएँ मन्नू भण्डारी के अन्तःस्थल तक गहरी उतर गई। वह अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए, अपने अस्तित्व की खोज करने लगती है और इस खोज को लेखिका बनकर प्राप्त करती है। वह लिखती हैं- "बचपन और किशोरावस्था के मेरे सम्पर्क-सम्बंध (जिसमें माँ-पिता,

भाई-बहिन, मित्र-अध्यापक आदि हैं) और वह परिवेश तो है ही, जिसमें मेरे लेखकीय व्यक्तित्व की नींव पड़ी थी। होश संभालने के बाद जिन पिता से मेरी कभी नहीं बनी....उम्र के इस बौनेपन को पीछे मुड़कर देखती हूँ तो आश्चर्य होता है, बल्कि कहूँ कि अविश्वसनीय लगता है कि आज अपनी अच्छाइयों और बुराईयों के साथ जो भी हूँ जैसी भी हूँ, उसका बहुत-सा अंश विरासत के रूप में शायद मुझे पिता से ही मिला है[172]।“ हमारे समाज में गौरे रंग को आरम्भ से ही सौंदर्य का प्रतीक माना गया है मुख्यतया स्त्री के सन्दर्भ में। रंग के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण करना समाज की मूल प्रवृति रहा है, किन्तु यही गौरा रंग मन्नू भण्डारी के पिता की कमजोरी था। मन्नू बचपन से ही काली एवं सूक्ष्मकाय वाली लड़की थी। इसलिए वह पिता की पसन्द नहीं थी। अपने से बड़ी बहन से तुलना करना, पिता द्वारा उसे अधिक प्रोत्साहन देना इत्यादि कारणों ने मन्नू के बाल हृदय में हीनता के भाव भर दिए थे। तुलना का यह रूप व क्षेत्र समय के साथ-साथ विस्तृत होते चले गए। शायद यही कारण रहा है कि आज तक मन्नू भण्डारी अपनी उपलब्धियों को भाग्य और ईश्वरीय चमत्कार से जोड़कर देखती हैं। वह लिखती हैं कि “आज भी परिचय करवाते समय जब कोई तरह-तरह के विश्लषेण लगाकर मेरी लेखकीय उपलब्धियों का जिक्र करने लगता है, तो मैं संकोच से सिमट ही नहीं जाती, बल्कि गड़ने-गड़ने को हो जाती हूँ। शायद

[172] एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ0 8

अचेतन की किसी परत के नीचे दबी इसी हीनभावना के चलते ही मैं अपनी किसी भी उपलब्धि पर भरोसा नहीं कर पाती....सब कुछ मुझे तुक्का ही लगता है[173]।

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी ने 1946-47 की क्रान्तिकारी घटनाओं का उल्लेख किया है, आजादी का स्वर पूरे भारत में गूंज रहा था। क्रान्ति की यह गूंज मन्नू भण्डारी के हृदय तक पहुँचती है। वह भी इस लड़ाई में कूद जाती हैं, हड़तालें, जूलुस, भाषण, प्रभात फेरियाँ आजादी को चाहने वाले युवा वर्ग की पहचान थी। मन्नू भी धीरे-धीरे युवा हो रही थी। देश की आजादी की लड़ाई को मन्नू भण्डारी ने स्वयं की भी आजादी समझा और कूद पड़ी इस लड़ाई में। पुंसवादी समाज की सोच और मानसिकता पर प्रश्नचिन्ह उठाते हुए वह स्त्री-विमर्श के एक ज्वलंत पक्ष को भी व्यक्त करती है। वह लिखती हैं कि "हाथ उठा-उठाकर नारे लगाती, हड़तालें करवाती, लड़कों के साथ शहर की सड़कें नापती लड़की को अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद बर्दाश्त करना उनके लिए मुश्किल हो रहा था, तो किसी की दी हुई आजादी के दायरे में चलना मेरे लिए। जब रगों में लहू की जगह लावा बहता हो, तो सारे निषेध, सारी वर्जनाएँ और सारा भय कैसे ध्वस्त हो जाता है, यह तभी जाना और अपने क्रोध से सबको थरथरा देने

[173] एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ0 18

वाले पिताजी से टक्कर लेने का जो सिलसिला तब शुरु हुआ था, राजेन्द्र से शादी की, तब तक वह चलता ही रहा[174]।"

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी स्त्री के जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक वर्जनाओं, बँधनों, समाज एवं पुरुषप्रधान समाज की ओर से लगी अनेक पाबंदियों को उजागर कर स्त्री-शोषण, स्त्री-अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करती है। एक लड़की का इस तरह रात-रात भर घर से गायब रहना, राजनीतिक मीटिंग में शामिल होना समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। आए दिन शिकायतों का ढ़ेर, पिता का क्रोध, मन्नू पर जब तब बरस जाता। समाज में यश, मान, प्रतिष्ठा बनाए रखना ही उनके पिता की सबसे बड़ी कमजोरी था। शायद इसी कमजोरी के चलते उन्होंने अपने बच्चों से कुछ ज्यादा ही आशाएँ बाँध रखी थी। इसी सदंर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "यश-कामना, बल्कि कहूँ कि यश-लिप्सा, पिताजी की सबसे बड़ी दुर्बलता थी और उनके जीवन की धुरी था वह सिद्धान्त कि व्यक्ति को कुछ विशिष्ट बनकर जीना चाहिए....कुछ ऐसे काम करने चाहिए कि समाज में उसका नाम हो, सम्मान हो, प्रतिष्ठा हो, वर्चस्व हो[175]।" माध्यमिक की शिक्षा पूर्ण कर, जब मन्नू उच्च माध्यमिक (फर्स्ट इयर) में आई, तो समझ का दायरा बढ़ा, मस्तिष्क में विचारों का तूफान उठने लगा। साहित्य के

[174] एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ0 23

[175] एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ0 23

प्रति रूचि जाग्रत होने लगी। मन्नू का साहित्य में प्रथम परिचय हिन्दी की प्राध्यापिका शीला अग्रवाल ने करवाया। यहीं से मन्नू के भीतर क्रान्तिकारी विचारों का प्रस्फुटन होता है। आजादी की माँग पूरे भारत में जोरों शोरों से उठ रही थी। कॉलेज, स्कूल के युवा भी इस आन्दोलन से जुड़कर भ्रष्टाचार और गुलामी के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे। युवा वर्ग का एक बहुत बड़ा समुदाय मन्नू के नेतृत्व में दिशा-निर्देश प्राप्त कर रहा था। मन्नू का राजनैतिक वर्चस्व देखकर पूरा कॉलेज प्रशासन सकते में था। आज तक जिन पिता से मन्नू के वैचारिक मतभेद रहे, वहीं पिता मन्नू के क्रान्तिकारी कारनामें सुनकर गौरान्वित होते हैं। आज पहली बार पिता को अपनी बेटी पर गर्व होता है। इसी संदर्भ में वे मन्नू से कहते हैं- "सारे कॉलेज की लड़कियों पर इतना रौब है तेरा....सारा कॉलेज तुम तीन लड़कियों इशारे पर चल रहा है? प्रिंसिपल बहुत परेशान थी और बार-बार आगह्र कर रही थी कि मैं तुझे घर बिठा लूँ, क्योकि वे लोग किसी तरह डरा-धमकाकर, डाँट-डपटकर लड़कियों को क्लासों में भेजते हैं और तुम लोग एक इशारा कर दो कि क्लास छोड़कर बाहर आ जाओ तो सारी लड़कियाँ निकलकर मैदान में जमा होकर नारे लगाने लगती हैं। तुम लोगों के मारे कॉलेज चलाना मुश्किल हो गया है, उन लोगों के लिए। कहाँ तो जाते समय पिताजी मुँह दिखाने से घबरा रहे थे और कहाँ बड़े गर्व से कहकर आए कि यह तो आज पूरे देश की पुकार है...इस पर कोई कैसे रोक लगा सकता है भला? बेहद गदगद स्वर में पिताजी यह सब सुनते रहे

और मैं अवाक्। मुझे न अपनी आँखों पर विश्वास हो रहा था, न अपने कानों पर। पर यह हक़ीकत थी"[176]। इस आत्मकथा के अध्ययन के उपरान्त मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है कि मन्नू भण्डारी अपने लेखन की कुशलता एवं मूल्यों की परायणता के कारण ही रचनात्मकता के क्षेत्र में लगातार सफल हुई है, उनकी रचनाओ में सरलता, सहजता का भाव होने के साथ ही साथ सामाजिक जीवन की वास्तविक घटनाओं का चित्रण बड़ी ही ईमानदारी से उभर कर आता है। उनकी कृतियाँ पाठकों में एक कौतूहल, आश्चर्य पैदा करती रहती है। आगे की घटनाओं को जानने के लिए पाठकों की बैचेनी बढ़ना ही सिद्ध करता है कि वे एक बेहद सफल लेखिका ही नहीं अपितु एक अच्छी इंसान भी है। कई बार उनकी रचनाएँ साहित्यकार पति राजेन्द्र यादव को भी मात दे देती हैं।

इक्कीसवीं सदी में स्त्री-स्वावलम्बन, स्त्री-आत्मसम्मान, स्त्री-सशक्तीकरण से सरोकार करवाती कई आत्मकथाएँ लिखी जा रही है। मन्नू भण्डारी की यह आत्मकथा एक स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की खोज के साथ-साथ पुरुष के साथ बराबरी करती साहसिक, संघर्षरत एवं सफल रचनाकार के रूप में लिखी स्त्री जीवन की कहानी है।

[176] एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ0 25

2.11 **प्रभा खेतान-अन्या से अनन्या**-2007

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' (2007 ई.) सम्पूर्ण स्त्री आत्मकथा-साहित्य की एक बेमिसाल रचना है। प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में अपने निजी जीवन का वास्तविक चित्रण नग्न यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। एक साहसिक गाथा के रूप में जहाँ इस आत्मकथा को अकुंठ प्रशंसाएँ मिली, वहीं बेशर्म और निर्जज्ज स्त्री द्वारा अपने आपको चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी इसे दिया गया है। एक स्त्री द्वारा अपने प्यार, एबार्शन, लिव इन रिलेशनशिप, प्रेम से इतर अन्य पुरुष से सम्बन्ध, पीरियड, मेनोपास (रजोनिवृत्ति) इत्यादि स्त्री की जैविक क्रियाओं को इस तरह सरेआम उजागर करना किसी भी स्त्री के लिए कोई आम बात नहीं है। यह एक साहसिक कदम है। इस तरह अपने जीवन का परत-दर-परत चित्रण प्रभा खेतान सरीखी साहसिक और निर्भीक महिला लेखिका की पहचान है।

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान ने अपनी अस्मिता की रक्षा और स्व की पहचान के लिए जहाँ बिगुल बजाया है, वहीं पुरुषप्रधान समाज से मुक्ति पाने के लिए पारिवारिक साँचे की जड़ों को झिंझोड़ने का भी श्रीगणेश किया है। अपनी इस वेदना को व्यक्त करती हुई लेखिका लिखती हैं कि "यह समाज तो कई-कई मुकामों पर औरत को उसकी पंगुता महसूस करवाता है। औरत के लिए केवल प्यार ही काफी नहीं, व्यक्ति बनने के लिए उसे और भी बहुत कुछ चाहिए।

धन-मान, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सभी कुछ। जीवन शुरु करने के लिए उसे पुरुष के बराबर की जमीन चाहिए और इस जमीन को समाज से छीनकर लेना पड़ता है, महज अनुनय-विनय से काम नहीं चलता"[177]। प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में पुंसवादी सामाजिक व्यवस्था की घुटन से मुक्त होने के लिए जहाँ बिगुल बजाया, वहीं स्त्री-अस्मिता, स्त्री-संघर्ष, स्त्री-अधिकार के लिए शोषण, अन्याय, उत्पीड़न की शिकार स्त्रियों को पुरुषप्रधान समाज के विरुद्ध अपने अस्तित्व, अस्मिता, अधिकारों को पाने हेतु लड़ाईयाँ लड़ी हैं। अपने अस्तित्व की खोज करती एक स्त्री के निरन्तर संघर्ष करने, आत्मनिर्भर बनने, स्वावलम्बी बनने से लेकर व्यापार की दुनिया में अपनी स्वतंत्र पहचान होने के साथ-साथ समाज के समक्ष एक मिसाल कायम की है। देश-विदेश भ्रमण कर चुकी प्रभा खेतान सोचती है कि स्त्री चाहे वह भारतीय नारी हो या पाश्चात्य वेशभूषा धारण करने वाली, पेन्ट-शर्ट पहनने वाली, स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं है। इस संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं कि "मैंने समझा औरतें वह चाहे बाल कटी हों या गाँव-देहात से आई हों, कहीं भी सुरक्षित नहीं। उनके साथ कुछ भी घट सकता है। सुरक्षा का आश्वासन पुरुषप्रधान मिथक है। स्त्री कभी सुरक्षित थी ही नहीं। पुरुष भी इस बात को जानता है। इसलिए सतीत्व का मिथक सवंर्धित करता रहता है। सती-सावित्री रहने का निर्देश स्त्री को दिया जाता है पर कोई स्त्री सती रह नहीं पाती।

[177] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 258

हाँ, सतीत्व का आवरण जरुर ओढ़ लेती है या फिर आत्मरक्षा के नाम पर जौहर की ज्वाला में छलांग लगा लेती है"[178]। प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में एक विवाहित डॉ.क्टर के धुआँधार प्रेम में पागल है। डॉ. सर्राफ बीमार हैं, उन्हें दिल का दौरा पड़ा है इसलिए इलाज के लिए अमेरिका लेकर जाती हैं। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ के सुख-दुःख में शामिल है। उनके परिवार का भरण-पोषण करती हैं, किन्तु उनके परिवार में प्रभा खेतान की भूमिका नगण्य है। अपने अधिकार एवं अस्तित्व की तलाश करती हुई वह लिखती हैं कि "मैं उनके साथ थी मगर किस रूप में....? इस रिश्ते को....नाम नहीं दे पाऊँगी। भला प्रेमिका की भूमिका भी कोई भूमिका हुई? प्रेम तो सभी करते हैं। प्रेम करने वाली स्त्री, माँ, बहन, पत्नी वह कुछ भी हो सकती है या फिर सीधे-सीधे उसे रखैल कहो ना। रखैल का अर्थ क्या हुआ? वही जिसे रखा जाता है, जिसका भरण-पोषण पुरुष करता हो, लेकिन डॉ. साहब तो मेरा भरण-पोषण नहीं करते, उनसे मैंने कभी कोई आर्थिक सहायता नहीं ली। मैं तो खुद कमाती थी, स्वावलम्बी थी एक आत्मनिर्भर संघर्षशील महिला थी[179]।" 'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान ने अपने बाल्यकाल से लेकर व्यापार जगत में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के मार्ग में आने वाली बाधाओं का उल्लेख किया है। लेखिका का अनाथ बचपन एवं महत्त्वाकांक्षी माँ की उपेक्षाओं को झेलते-झेलते

[178]अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 208

[179] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 9

अन्दर ही अन्दर टूटती जा रही थी। बचपन में उन्हें कभी माँ से वह प्यार, स्नेह नहीं मिला, जो उस घर की अन्य संतानों को प्राप्त होता है। अपनी माँ की अपेक्षा दाई माँ के अधिक निकट रहीं। दाई माँ ही मानो प्रभा खेतान की दुनिया थी। इसी सदंर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "मेरे साथ मेरा अकेलापन हमेशा रहा है, पर यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ ही समझाता रहा है। मैंने अपने-आपको बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में संजोया। हाँ, टूटी हूँ, बार-बार टूटी हूँ.....पर कहीं तो चोट के निशान नहीं..... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई[180]।"

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान समाज की रूढ़ि और बीमार मानसिकता पर सवाल खड़ा करती हैं कि क्या स्त्री का जीवन बच्चे पैदा कर पति की वंशबेल को आगे बढ़ाना है? क्या इससे इतर उसकी अपनी कोई पहचान नहीं। बच्चे पैदा करते-करते लेखिका की माँ का शरीर जर्जर एवं बीमारियों का घर बन गया। शारीरिक रूप से असमर्थ माँ के स्वभाव में विद्रोह फूटने लगा। माँ द्वारा लेखिका को कभी यह प्रेरणा मिली कि- "औरत को आत्मनिर्भर होना चाहिए। जिन्दगी में जोखिम उठाना सीखना चाहिए। अम्मा के पोर-पोर से फूटती निराशा चीख-चीखकर कहना चाहती-क्या मिला मुझे? माना कि पति देवता थे पर उन्हें देवत्व के पद पर मैं ने ही आसीन किया, लेकिन मैं तो देवी नहीं बन गई, क्या मेरी कोई

[180] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 29

मानवीय आकांक्षा नहीं? भूल जाऊँ अपने-आपको? बस दिन-रात तुम बच्चों की चिन्ता करूँ, तुम्हारे लिए जीऊँ, तुम्हें दे दूँ सब कुछ? मैं कुछ भी न रहूँ[181]?" पुंसवादी सामाजिक व्यवस्था में परिवार का आर्थिक स्तम्भ पुरुष होता है, जिसकी छत्रछाया में परिवार सुरक्षित रहता है। यदि उसकी मृत्यु हो जाती है, तो पूरा परिवार असहाय एवं कमजोर हो जाता है। उनके पिता के देहान्त के बाद दोनों बेटियों की जिम्मेदारी बीमार माँ के कमजोर कंधों पर आ गई थी। इसी सदंर्भ में वह लिखती हैं कि "अम्मा की आखिरी जिम्मेदारी गीता और मैं, दो लड़कियाँ थी, जिनके ब्याह की चिन्ता उन्हें दिन-रात खाए जा रही थी। कैसे होगा, इन छोरियों का ब्याह, कहाँ से लाऊँगी इनका दायजा[182]?" अपनी स्कूली शिक्षापूर्ण कर प्रभा खेतान उच्च अध्ययन के लिए कॉलेज जाती है, वहाँ पहुँचकर देश एवं वैश्विक स्तर की राजनीति को समझती हैं। घर से बाहर की शिक्षित स्त्रियों की दशा देखकर स्त्रियों की आँसू भरी नियति को देखकर सिहर उठती हैं। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "एक बड़ी गहरी बात मन के भीतर बैठी हुई थी। मुझे अम्मा की तरह नहीं होना, कभी नहीं। भाभी की घुटन भरी जिन्दगी की नियति मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूँद आँसू में स्त्री का सारा ब्रह्माण्ड समा जाए? क्यों? किसलिए? रोना और

[181] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 91

[182] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 37-38

केवल रोना, आँसुओं का समन्दर, आँसुओं का दरिया और तैरते रहो तुम। अम्मा, जीजी, भाभीजी, ताई, चाचियाँ क्या सभी रोने के लिए पैदा हुई। यहाँ तक कि स्कूल की मेरी शिक्षिकाएँ जिनकी और कभी मैंने बड़ी ललक से देखा था, जो मेरे जीवन में प्रेरणा स्रोत रही थी, वे भी तो आँसुओं से इसी समन्दर को भरे चले जा रही थी। स्कूल की हेड मिस्ट्रेस पुष्पमयी बसु को मैंने प्रायः उदास और दुःखी पाया। वे अकेली थीं, लेकिन मन्नू भण्डारी, जिन्होने मुझे चौथी से ग्यारहवीं तक पढ़ाया, साहित्य की दुनिया में जिनके कदमों की छाप पर मैंने चलना चाहा वे भी कहाँ इन आँसुओं की नियति से मुक्त हो पा रही थीं? राजेन्द्र यादव को उन्होने जीवन साथी के रूप में स्वीकारा था, लेकिन शादी के बाद एक दिन मन्नू जी ने रोते-रोते अपने पति-परमेश्वर के कारनामे सुनाए। ऐसे दगाबाज आदमी पर मुझे बेहद गुस्सा आया था। अपनी इस माँ जैसी शिक्षिका को मैंने पहली बार रोते हुए देखा था। गलत पुरुष के हाथ में पड़कर औरत कितनी असहाय हो जाती है, यह भी उसी दिन समझा था[183]।"

'अन्या से अनन्या' प्रभा खेतान की भोगी हुई जिन्दगी एवं स्त्री जीवन के संघर्षों का महाख्यान है। अपनी इस आत्मकथात्मक कृति में लेखिका को बचपन में महत्त्वकांक्षी माँ से कभी प्रेरणा मिली थी- "चाँद को छूने की कल्पना करो तो खजूर के पेड़ तक तो पहुँचोगे। अरे तुम्हारी चाहना ही सीमित रहेगी तो आगे कैसे

[183] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 45

बढ़ोगे? जो मिले उसी में सन्तोष खोज लेना भला यह भी कोई बात हुई[184]?“ अपने अध्ययन काल के दौरान प्रभा खतेान द्वारा अपने गुरु डॉ. चैटर्जी को दी गई गुरुदक्षिणा का स्मरण हो आता है। गुरु ने गुरु दक्षिणा माँगी- “स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है। अपनी नियति को बदल सको तो वह एकलव्य की गुरुदक्षिणा होगी[185]।“

‘अन्या से अनन्या’ में प्रभा खेतान सरेआम अपनी अत्यन्त निजता भरी जिन्दगी का खुलासा करती हैं। पहले से ही विवाहित एवं पाँच बच्चों के पिता डॉ. सर्राफ से प्रेम कर बठती है। समाज की परवाह किए बिना अपना सब कुछ दाव पर लगा देती है। वह लिखती हैं कि “डॉक्टर साहब मेरे लिए बरगद की छाँव थे। मेरी जिन्दगी का पड़ाव, मेरा सब कुछ, रुपए-पैसे की मुझे कोई चिन्ता नहीं, मैं आत्मनिर्भर थी। मुझे रूपया कमाना आता है, बेईमानी से नहीं.....बल्कि ईमानदारी से[186]।“

स्त्री के रवैये पर समाज की आलोचनात्मक नज़रें सदैव टिकी रहती हैं। समाज के सारे बंधन स्त्री के लिए हैं, पुरुष सब प्रकार के बँधनों से मुक्त है। पुरुष चाहे जो करे, वह स्वतंत्र है क्योकि वह पुरुष है, उसकी अपनी सत्ता है, वह किसी दूसरे की स्वतंत्रता को छीन सकता है अगर किसी को बदलना है, तो स्त्री ही बदले।

---

[184] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 169

[185] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 63

[186] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 14

पुरुष क्यों नहीं? इस आत्मकथा का मूल प्रश्न है, जो स्त्री जाति को उसके अस्तित्व खोजने हेतु प्रेरित करता है। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ के धुआँधार प्रेम में पागल हैं। अपना सारा धन, जीवन दाव पर लगा देती हैं, फिर भी डॉ. साहब उनके चरित्र को लेकर आशंकित रहते है। लेखिका लिखती हैं कि "ओफ्फ.....डॉ. साहब मैं थक गई हूँ, अपने चरित्र की कैफियत देते-देते....आपके प्रति अपनी उत्सर्गता, वफादारी प्रमाणित करते-करते। औरत की वही परम्परा अच्छी थी जब वह घर में घूँघट निकाले बैठी रहती थी, कहीं कोई झंझट नहीं था"[187]। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ को अपने चरित्र की सफाई देती देती थक चुकी हैं और वह अपना अधिकार माँगती है। वह कहती हैं कि "आपको मुझसे शादी करनी होगी अन्यथा मुझे छोड़ दीजिए, मैं अपनी जिंदगी जीना चाहती हूँ। अपनी जिंदगी तो अपने ढंग से तुम जी रही हो, कौन इसमें डिस्टर्ब करता है? तुमसे कोई कुछ कहने जाता है? 'नहीं.....मुझे यह बंदीघर अच्छा नहीं लगता| आप हर बात की खोज-खबर रखते हैं, कौन आया, कौन गया।' मैं भी चीख रही थी | "स्वतंत्र स्त्री का क्या यही अर्थ हुआ कि उसे वेश्या का दर्जा दे दिया जाए? मुझे आपसे और आपकी गार्जियन से मुक्ति चाहिए"[188]। प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में अपने भोगे हुए जीवन का आत्मचिंतन करती है। वह लिखती हैं कि "बचपन की ओर मुड़ती हूँ और कभी-

[187] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 212

[188] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 180

कभी सोचती हूँ कि आखिर कैसे मैंने यह त्रासदी झेली। आखिर मैं जिन्दा कैसे रह गई, एक बड़ी वाहियात-सी जिंदगी जो थी"[189]। एक सुखी जीवन की चाहना हर स्त्री के भीतर होती है ओर होनी भी चाहिए। यह एक स्त्री का अधिकार है। प्रभा खेतान एक स्थान पर लिखती हैं कि "सुखी विवाहित जीवन, एक भरा-पूरा परिवार सभी तो एक-दूसरे से जुड़ी हुई कड़ियाँ है। एक के बाद दूसरी कड़ी की कामना हर स्त्री की है"[190]। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ की ताकत थी। वह स्वयं कई बार टूटी पर डॉ. सर्राफ को उन्होने कभी टूटने नहीं दिया। डॉ. साहब जब कैसर रोग से पीड़ित थे। उन दिनों प्रभा खेतान ने उनका साथ नहीं छोड़ा। आजीवन वह उनके साथ उनकी छाया बनकर रही। डॉ. सर्राफ के पीछे दौड़ते-दौड़ते भी प्रभा खेतान उन्हें खो देती हे डॉ. सर्राफ का देहान्त हो जाता है। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ से किए गए वादे को पूरा करती हैं। उनके न रहने पर भी उनके परिवार की जिम्मेदारी को पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से निभाती हैं, ताकि डॉ. सर्राफ की आत्मा को चौन मिल सके। डॉ. सर्राफ की मृत्यु ही प्रभा का नवजीवन था।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि यह आत्मकथा स्त्री-शक्ति, स्त्री-अस्तित्व, स्त्री-संघर्ष का महाख्यान है। इस आत्मकथा में भारतीय नारी ही संघर्ष नहीं करती अपितु पाश्चात्य नारियाँ फिर चाहे, वह आत्मनिर्भर ही क्यों न हो वह भी पुंसवादी

---

[189] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 15

[190] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ0 250

सामाजिक व्यवस्था से ग्रसित है। प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' स्त्री सशक्तीकरण की एक ऐसी मिसाल है, जो सभी स्त्रियों के लिए प्रेरणास्पद है। प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' स्त्री मुक्ति की दिशा में एक अनूठा प्रयास है।

2.12 **चद्रकिरण सौनरेक्सा-पिंजरे की मैना**-2008

'पिंजरे की मैना' चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा सन् 2008 में प्रकाशित होती है। यह आत्मकथा का शीर्षक एक आधुनिक स्त्री की स्थिति को उजागर करता है। जो निरीह दुखी होते हुए भी इस समाज को अपनी परिस्थितियों और समस्याओं से अवगत कराने में वह बहुत ही अधिक व्याकुल है। इस आत्मकथा के नाम से ही पता चल रहा है कि स्त्री इस समाज के कारण घर के पिंजरे में कैद है। वह इस घर को ही पिंजरा मान रही है। वह इस पिंजरे में बंद मैना की तरह बाहर जाने के लिए अपनी पंखों को फड़फड़ा रही है। इस आत्मकथा की घटना एक नारी को दयनीय स्थिति के जीवन को उजागर करना ही है। चन्द्रकिरण सैनरेक्सा ने अपनी आत्मकथा को बताते हुए कहा है कि - ''आत्मकथा का केवल एक उद्देश्य होता है अपनी जीवन यात्रा निष्पक्ष दर्शक की तरह पुनरावलोकन करना। 'पिंजरे की मैना' उसी का फल है[191]।'' इस लेखिका का जन्म पेशावर में हुआ था। चन्द्रकिरण सोनरैक्सा का पिता की सरकारी नौकरी थी। उन्होंने अपनी

[191] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 34

बेटी को बहुत ही लाड़ प्यार करके उसका पालन पोषण किया था। वह अपने पिता बारे में बताती है कि - ''अपने बाबूजी जैसा संतान वत्सल पिता मैंने आज भी अपनी इतनी लंबी जिंदगी में नहीं देखा। उस जमाने में, चाहे लड़के हों या लड़कियाँ बाप से बस डरना भर जानते थे साथ बैठकर खेलना, बीमारी में सेवा करना, माँ की प्रताड़ना से बचाना- ये सब उस समय आम बाते नहीं थी और मुझ पर तो बाबूजी की विशेष ही छत्रछाया रहती थी। मैं उनकी सबसे छोटी अन्तिम संतान जो थी[192]।''

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की पढ़ने की आदत बचपन से ही काफी गहरी रही थी। उनको पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने में आनंद आता था। वह बता रही थी कि – "मेरी पढ़ने की सुधा नये-नये उपाय सोचती| मोहल्ले के जिस भी घर में कोई हिन्दी-उर्दू की कोई किताब या मासिक, साप्ताहिक पत्रिका दिखाई देती मैं उसे वहीं घोट जाती पर उन दिनों घर में आमतौर पर पुस्तकें होती ही कितनी थी खासकर निम्न मध्य वर्ग में[193]।'' चन्द्रकिरण सौनरेक्सा ने कलकत्ता से निकलने वाले बाल-मासिक पत्र 'विजय' के लिए 'अछूत' नामक कहानी भेजी थी। कहानी छप गई और सभी ने उस कहानी की प्रशंसा की। इस कहानी के बाद लेखिका की कहानियों कई पत्रिकाओं में छपी थी। यह लेखिका अपनी कहानियों का पारिश्रमिक संपादकों से नहीं लेती थीं।

---

[192] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 48

[193] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 67

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा के विवाह के लिए हरिवंशराय बच्चन का प्रस्ताव आया था। बच्चन जी विधुर थे तथा लेखिका से उम्र में दस वर्ष बड़े थे। बच्चन की 'मधुशाला' से अधिक प्रसिद्ध बच्चन को शराबी समझने के कारण लेखिका के भाई ने शादी से इंकार कर दिया। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा के भाई के मित्र मित्तल ने विश्वास कराने की कोशिश की की वह एक शायर हैं, लेकिन शराब नहीं पीते। स्वयं लेखिका के भाई ने क्रोधित होकर कहा कि - ''आज तक मैंने कोई शायर ऐसा नहीं देखा, जो शराब न पीता हो..... फिर वह शायर जो शायरी ही शराब की करता हो या और नहीं तो पत्नी का गम भुलाने को भी दुगुनी पीता होगा- मुझे शराब से सख्त नफरत है[194]।'' स्वयं लेखिका बच्चन की कविताओं से बहुत अधिक प्रभावित थी। वह चाहकर भी अपने भाई के सामने नहीं बता पाई थी कि - ''भाई साहब होने दीजिए शराबी। इतने प्रसिद्ध कवि की पत्नी बनना ही गर्व की बात होगी[195]।''

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की शादी 'विचार पत्रिका के उप-संपादक श्रीकांतचन्द्र से तय किया है। उसकी शादी उसी से हो जाती है। वह ईर्ष्यालु, अहंग्रस्त व कुंठित मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। इस तरह वह अपने लेखन कार्य को सही दिशा नहीं दे पा रही थी। वह अपनी घर गृहस्थी की जिम्मदेारियों में उलझती ही गई। उसके पति से उसको कोई भी किसी प्रकार का सहयोग नहीं मिल पाया है। चन्द्रकिरण जी ने 'हंस' पत्रिका में कहानी भेजी पत्रिका के संपादक का प्रत्युत्तर में पत्र पढ़कर

[194] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 78

[195] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 84

स्वयं ही लेखिका के पति आग बबूला होकर कहता हैं कि - ‘‘ये साले संपादक भी लड़कियों को बड़े मीठे-मीठे पत्र लिखते हैं| तुमने भी तो कहानी भेजते समय पत्र में कुछ न कुछ तो लिखा ही होगा जरूर... उसके चूतड़ों में भी मला होगा’’[196]। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा पति की संकीर्ण भावना को देखकर विक्षुब्ध हो गई। वह कहानी लिखकर पति को छपवाने के लिए पकड़ा देती। वह किसी भी नयी पत्रिका में अच्छी से अच्छी कहानी भेज देते, जिस कारण लेखिका को न नाम मिला और न ही दाम। इसका खामियाजा स्वयं लेखिका को भुगतना पड़ा - ‘‘शायद यही वह सबसे आदर्शवादी पतिव्रता पत्नी का निर्णय था जिसकी कीमत मेरे पूरे साहित्यिक जीवन ने चुकाई, और लगभग गुमनामी के कगार पर खड़ी अभिशप्त सरस्वती के वरदान सी मैं खड़ी हूँ[197]।’’ चन्द्रकिरण सौनरेक्सा पर माँ सरस्वती की ऐसी कृपा थी कि वह घरेलू कार्य करते हुए भी लेखन करती रहती है। - ‘‘सो मेरे साथ, सरस्वती का ऐसा वरदहस्त था कि मुझे अपने लिखने के लिये न एकान्त चाहिये था, न कोई विशेष वातावरण चूल्हे-अँगीठी पर दाल चढ़ाकर, वहीं बैठे-बैठे भी दो-चार पृष्ठ लिख लेती दोबारा व्यवस्थित करने का समय न मिलता, तो कहानी का पहला ड्राफ्ट ही पत्रों में भेज देती। बुक पोस्ट कर देती और वह कभी गुम नहीं हुआ, हमेशा गतंव्य स्थान पर पहुंचा और कहानी छपी भी लेखिका के पति ने पी

[196] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 90

[197] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 77

सी. एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्हें डिप्टी कलेक्टर के पद पर बदायूँ में नियुक्ति मिली। यह अपनी गलत आदतों के कारण अपनी नौकरी बचा न सके। उन्होंने लेखिका के सामने कॉलेज में पढ़ने वाली सावित्री नामक लड़की को घर लाकर गुलछरे उड़ाए। सावित्री के पिता ने तीस हजार रुपये की मांग की और न देने पर अधिकारियों से शिकायत करने की धमकी दी। उच्चाधिकारियों द्वारा उनके विरुद्ध गुप्त रूप से जांच की गई और दोषी पाये जाने पर उन्हें सस्पेंड कर दिया गया, जिस कारण से उसकी नौकरी भी छूट गई थी। अब लेखिका के जीवन में दुःख के बादल मंडराने लगे। उन्होंने नौकरी के लिए कवि सुमित्रानंदन पंत जी से सहायता मांगी। पंत जी ने आकाशवाणी के डायरेक्टर जनरल श्री माथुर जी से कहकर 'महिला व बाल विभाग' में स्क्रिप्ट राइटर के पद पर तीन सौ रुपये में लखनऊ में नौकरी लगवा दी। नौकरी के कारण चन्द्रकिरण के जीवन में आये दुःख के बादल धीरे-धीरे घटने लगे। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा के पारिवारिक मित्र शैदा हसन ने उन्हें प्रेम जाल में फँसाने की कोशिश की जाती है। स्वयं लेखिका डाँट कर उन्हें कह देती है कि - ''असल में तुम्हारे दिल में इस समय जो मेरे लिये जज्बात है वह इश्क नहीं फकत हमदर्दी है, जो एक मुसीबतजदा औरत से, किसी भी मर्द की हो जाती है। बुरा मत मानना तुम्हारी बीबी है या बच्चे हैं क्या तुम उनसे बेवफाई नहीं कर रहे''[198]? हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में लेखिका अपने पति के साथ मद्रास गई पति को यहाँ से बम्बई जाना है। पत्नी

[198] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 89

ने अपने पति से दस रुपये माँगे तो पति ने दस रूपए देने से इंकार कर दिया। स्वयं लेखिका के लखनऊ पहुचने पर पति का क्रोध भरा पत्र मिला। उसने कहा कि - ''तुम्हें मैंने मद्रास में दस रुपये नहीं दिये, तो तुम जरूर रास्ते भर मुझे कोसती गयी होगी। तुम्हारा कोसना सफल हुआ। बम्बई स्टेशन पर मेरा बक्सा तौला गया और मुझे पंद्रह रुपये जुर्माना देना पड़ा पर कोसना तुम्हें ही नहीं आता, मुझे भी आता है। मैं अभिशाप देता हूँ कि तुम जीवन भर भीख माँगोगी तुम्हारे लड़के बैयरे बन कर, होटलों की जूठन उठवायेंगे और तुम्हारी लड़कियों कोठों पर बैठेंगी। मैं अब लखनऊ आऊँगा, तो कहीं और उतरूँगा तुम्हारे हाथ का खाना तो दूर, कभी पानी भी नहीं पीउंगा''[199]| पति का पत्र लेखिका के अन्तर्मन को झकझोर देता है।

चन्द्रकिरण प्रतिकूल परिस्थितियों में भी निरन्तर लेखन कार्य करती रहीं। इस लेखिका की कहानियों का संग्रह 'जवान मिट्टी' विष्णु प्रभाकर जी के अथक प्रयासों से प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। पति कांतिचन्द्र के अहम् को अधिक चोट लगी। वह विष्णु प्रभाकर और प्रकाशक दोनों से बहुत नाराज हो गये। प्रकाशक ने अन्य रचनाएँ छपने से आनाकानी को करने लगे थे। स्वयं लेखिका को पति का शंकालु व्यवहार से दुःखी होकर कहती है कि ''परन्तु 'जवान मिट्टी' में मेरी रही-सही जिंदगी की कमाई अपनी इज्जत को कांति जी की मानसिक रोगग्रस्त

[199] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 55

दशा ने, एक झटके में छीन लिया। इस रोग का न कोई इलाज है, और न ऊपर से वह रोगी लगता है। सामान्य कार्यकलाप और वार्तालाप में, कोई रोगी को देख कर कुछ नहीं कह सकता। पर, विशिष्ट स्थिति वातावरण में रोगी का व्यवहार तथा अनर्गल प्रलाप असहनीय हो जाता है। अंदर का फ्रस्टेशन बहुत ही कुरित रूप में उभर कर आता है धाराप्रवाह गालियाँ बोलना या अकल्पनीय स्थितियाँ सोच लेना उसकी आदत बन जाती है। उसे सब अपने दुश्मन नजर आते है। अपने बच्चों की सफलता भी खुशी देने के बजाय उसके मन में ईर्ष्या का कारण बन जाती है[200]।''

'हंस' पत्रिका के संपादक अमृतराय तथा विष्णु प्रभाकर के कारण लेखिका के पति अनैतिक संबंध कहकर समाज में बदनामी करने लगे थे। स्वयं लेखिका भी अपने पति के मन में बैठे शक के कीड़े को निकालने में असमर्थ थी। अन्ततः उन्होंने आत्मकथा लिखकर अपने लेखन को विराम दिया। लेखिका चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखती थीं। उसने उसको लिखा है कि - ''मैं जन्म से आस्तिक हूँ, आज भी कोई भी परिवर्तन नहीं आया है नास्तिक होने और उस विश्वास के साथ जीने के लिए बहुत बड़े साहस व ईमानदारी की जरूरत होती है। यह मुझमें इस जन्म में तो नहीं है, अगला जन्म हो, तो उसमें भी होगा यह विश्वास नहीं है[201]।''

---

[200] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 87

[201] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 53

स्वयं चन्द्रकिरण सौनरेक्सा अपनी अन्य रचनाओं तथा आत्मकथा में अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है कि - ''हमेशा की तरह बिना किसी लाग लपेट के सीधी-सच्ची दिल से निकली बात को, दिल तक पहुंचाने की कोशिश है बस इतना सा अंतर मेरी कृतियों और आत्मकथा में है कि ये जगबीती थीं और यह आपबीती है[202]।''

लेखिका के बारे में में डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र जी कह रहे है कि - ''जिंदगी भर प्रतिकूल परिस्थितियों एवं विकृत मानसिकता वाले पति के बीच जीवन संघर्ष एवं लेखन को आगे बढ़ाते हुए जिस महिला ने हिन्दी कथा साहित्य का भंडार भरा| उसे मजबूरन लेखनी को विराम देना पड़ा। अन्ततः आत्मकथा लेखन करके उन्होंने अपना जीवन खुली किताब की तरह ही नहीं रखा है, बल्कि तीरा के दशक के भारत की जीती जागती तस्वीर भी पेश की है[203]।'' इस लेखिका को दिल्ली की हिन्दी साहित्य अकादमी मे सन 2001 में 'स्त्री सशक्तीकरण वर्ष' में बीसवीं शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ महिला कथाकार के रूप में सम्मानित किया गया था। हिन्दी साहित्याकाश की प्रसिद्ध लेखिका चन्द्रकिरण सौनरेक्सा जी 9 मई, 2009 को इस प्रभु निरंकार में मिल गई। हिन्दी साहित्य में इस लेखिका का बहुत ही अधिक योगदान रहा था। इस प्रकार आत्मकथा में बताया गया है कि किस तरह से इस पुरूष प्रधान समाज में हर नारी का शोषण होता है। क्योंकि यह समाज ही पुरूष

[202] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 55

[203] पिंजरे की मैं ना, चद्रकिरण सौनरेक्सा, पृ0 41

प्रधान समाज है। इस पुरूष प्रधान समाज में तो नारी को हीन की दृष्टि से ही देखा गया है। इसलिए नारी का समाज तो इस दुविधा में है नहीं कही। कहने के सब अधिकार है करने के लिए वह केवल पुरूष पर ही आश्रित रहे। पति चाहे तो परायी स्त्री से प्रेम करें किसी पराई लड़की को घर पर लाकर अपनी मन मानी करें। पत्नी को अपनी विचारों को स्पष्ट करने तक की आजादी नहीं है। ऐसा समाज क्यों है। यह इस पुरूष प्रधान समाज में स्त्री के साथ ही कैसे हो रहा होता है। इतना बड़ा अधिक शोषण। क्या कारण है कि नारी अपने अधिकारों तक के लिए सीमित कर दी गई है।

2.13 रमणिका गुप्ता- 'आपहुदरी' (एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, 2014-15 ई.)

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा भाग-2 'आपहुदरी' (एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, 2014-15 ई.) स्त्री आत्मकथा-साहित्य की ही नहीं बल्कि हिंदी-साहित्य की सद्य प्रकाशित आत्मकथा है। 'आपहुदरी' यह कथा लेखिका के जीवन में घटित तमाम घटनाओं, टकराहटों, सघंर्षों और भटकावों का आकलन है | यह आत्मकथा लेखिका के जीवन के दर्द को बयां करते हुए सामन्ती समाज की पोल खोलती है।

'आपहुदरी' रमणिका गुप्ता के जीवन की वास्तविकता को परत दर परत खोलती बोल्ड एवं निर्भीक आत्मस्वीकृति की साहसिक गाथा है, जिसमें लेखिका ने बचपन से लेकर धनबाद तक की यात्रा कला, साहित्य, समाज-सेवा और राजनीति संघर्षों को चिन्हित किया है। इस आत्मकथा में रमणिका गुप्ता अपने विरुद्ध खड़ी सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं और तथाकथित सस्ंकारों की बाढ़ से उबरने के लिए

छटपटाती है। अपने पर लगे लांछनों को स्वीकार नहीं करती| सत्य की विध्वंसक एवं रहस्यमयी मारक शक्तियों का प्रयोग स्वयं के बचाव के तौर पर करती हुई वापिस उसी समाज को वह सारे लांछन आरोप लौटा देती है। इस आत्मकथा का समय बहुत लम्बा है, स्पेस व भूगोल विशाल है। पंजाब के सनाम में जन्मी रमणिका गुप्ता के पिता पटियाला रियासत में (मिलिट्री) डॉक्टर थे। नाना दीवान दीनानाथ खोसला इसी रियासत के बड़े जमींदार थे। लेखिका का जन्म सामन्ती समाज में हुआ था। इस समाज में पुरुषों को पूर्ण स्वतंत्रता, अधिकार प्राप्त थे, वहीं महिलाओं पर अनेक पाबन्दियाँ, रोकटोक पुरुषप्रधान समाज द्वारा लगाई गई थीं। लड़कों के जीवन के तौर-तरीके अलग थे और लड़कियों के अलग। लेखिका अपनी इच्छानुसार कार्य करने का साहस करती हैं। सबका विरोध झेलती हैं परम्पराओं को स्वयं ही तोड़ती हैं। मां द्वारा सिर ढ़क कर चलो की हिदायत देने पर वह तीखे तेवरों से उनका विरोध प्रकट करते हुए कहती हैं कि "नहीं ढ़कूंगी सिर! क्यों ढ़कूं? क्या लड़के सिर ढ़क कर चलते हैं? रवि को क्यों नहीं कहती अपना सिर ढ़कने को? मैं कोई उससे कम हूँ क्या? नाना जी के हवेली और क्लब में इतनी मेमें आती हैं, वे 'चुन्नी' (दुपट्टा) नहीं ओढ़ती। मैं क्यों नहीं उनकी तरह बिना 'चुन्नी' ओढ़े चल सकती?" "यह अच्छे घर की लड़कियों का रिवाज़ नहीं है"[204]। माँ मुझे समझाते हुए कहती। "मुझे नहीं चाहिए अच्छे घर के रिवाज़।

[204] आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, सिर ढककर चलो, पृ0 33

मैं नहीं बनूगी अच्छे घर की लड़की। यह सब पुरानी बातें है। मैं नहीं मानूंगी कोई पुरानी बात। मैं अपना ही रिवाज़ चलाऊँगी, खुद अपने आप। मैं जोर देकर कहती[205]।" बचपन से ही परिवार में सबसे जिद्दी लड़की रही लेखिका को 'आपहुदरी' कहा जाता था। यह एक पंजाबी शब्द है, जिसका अर्थ होता है अपने मन की करने वाली अर्थात् जिद्दी लड़की। सामन्ती समाज में स्त्री को भोग्या मानकर भोगा जाता था। एक पुरुष के एक से अधिक प्रेम प्रसंग परिवार में उनकी मर्दानगी का प्रमाण होता था। पत्नियाँ, बहनें, माएँ भी बिना विरोध किए बड़ी सरलता से ऐसे अमान्य संबंधों को स्वीकार कर लेती थीं। रियासतों में ये आमतौर पर होता था। लेखिका के पिता जो कि पेशे से मिलिट्री में डॉक्टर थे। वे अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते, किन्तु अवसर हाथ लगने पर घर से बाहर भी पर स्त्रियों से संबंध स्थापित करते रहते थे। नाना के रूप में रमणिका एक ऐसा जीता जागता जमींदाराना उदाहरण देखती हैं, जो घर में ही अपनी बेटी से ही सबंध स्थापित करता हैं, जो कि भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है, रिश्तों का यह घिनौना रूप, बेटी की इज्जत पर अपने पौरुष का दम भरता यह सामन्ती समाज, जिसे अपने किए कुकृत्य पर जरा-भी ग्लानि नहीं होती बल्कि पीड़िता ही स्वयं को कसूरवार मानकर मानसिक संताप झेलती रहती है | अपने समाज में स्त्री की इस विवशता को प्रकट करते हुए लेखिका लिखती हैं कि "घर में औरत को आदर, प्रचुर प्रेम के

[205] आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, सिर ढककर चलो, पृ0 33

चश्मे (झरने), बाहर ऐय्याशी से सराबोर सागर। औरत का दोनों रूपों में भोग। पत्नी का पावनरूप, प्रेमिका का अनुराग, वीरांगना की आसक्ति, पुरुष सभी का बिना अपराधबोध के उपभोग करता था। स्त्री अपराध-बोधों की पिटारी थी। अपनी ज़रा-सी बेवफाई उसे अपनी ही निगाहों में चोर बना देती थी और चोर बनाने वाला पुरुष बेदाग़ रहता था"[206]। इस आत्मकथा में रमणिका गुप्ता बताती हैं कि लड़की के बड़े होने का अहसास लड़की को बाद में, सबसे पहले समाज को पता चलता है। समाज की नजरें उसे हर क्षण स्मृति दिलाती रहती हैं कि वे बड़ी हो रही है। उसके रूप-रंग, चाल-चलन पर समाज दृष्टिपात करता रहता है | समाज की हेय नजरें लड़कियों के आत्मविश्वास को कमजोर और खोखला करती रहती हैं, कुछ साहसिक लड़कियाँ ऐसी भी होती हैं, जो समाज की सभी हेय नजरों का सामना बड़ी हिम्मत, ताकत से ही नहीं करती अपितु अपने तरीकों से उनका जवाब देती हैं। एक लड़की के सदंर्भ में उसके रूप रंग का भी विशेष महत्त्व होता है, चूंकि लेखिका दिखने में सुन्दर नहीं थी। माँ की उपेक्षित नजरें उनका पीछा करती रहती हैं| मां के प्रेम के अभाव की पूर्ति दादी माँ से प्रेम पाकर पूरा करती हैं। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "हेय नजरों ने हमेशा ही मुझे विचलित किया। बचपन से ही मैं आँखों की भाषा 'नज़र' के माध्यम से पढ़ने में माहिर हो गयी थी। देखते ही 'नज़र' को पहचान लेती थी। इसलिए नजरें मुझे प्रभावित

[206] आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दोहरे मापदडं , पृ0 70

करती थीं। जीवन भर आँखें मेरा पीछा करती रहीं। आँखे-ं नजर-दृष्टि-मैं इन्हीं से अपने लिए कुछ पाने को लालायित रही, भूखी रही। प्रेम-प्रशंसा, आदर-सम्मान। मैं दया-तरस-निरादर, तिरस्कार या उपेक्षा की नज़रों से सदैव जूझती रही। उपेक्षा की नजरें मुझे सालती थीं। प्यार, सम्मान और स्नेहभरी नजरें मुझे समर्पित हो जाने को प्रेरित करती थीं। मेरा नजरों से घृणा और प्यार का रिश्ता गहरा होता जा रहा था[207]।"

भारतीय सस्ंकृति में यौन सबंधों की चर्चा खुले आम करना जहाँ निषिद्ध माना गया हैं, वहीं सामन्ती समाज में ये सबंध घर से बाहर ही नहीं अपितु घर के भीतर भी बनते थे। इनका शिकार कभी नौकरानियाँ तो कभी बहुएँ, बेटियाँ हुआ करती थीं। लेखिका अपने बाल्यकाल से ही यौन उत्पीड़न का शिकार होती रही अपने स्तर पर उसका विरोध भी प्रकट करती रही। अपने साथ हुई इन सारी ज्यादतियों को इस तरह सरेआम बयां करना एक जोखिम भरा कदम है। यह सच एक स्त्री के नितांत निजी हैं। रमणिका गुप्ता अपने बचपन की कुछ ऐसी ही घटनाओं का उल्लेख करती हैं क्योंकि वह यौन सबंधों से जुड़ी हैं। सामन्ती परिवारों के धनाढ्य या पेशेवर पुरुष ही नहीं अपितु इनके यहाँ काम करने वाले नौकर पुरुष भी यौन सबंध उसी घर में काम करते हुए उसी घर की बच्चियों, बहुओं से स्थापित करते थे। पाखंड का चोला ओढ़े धर्म के ठेकेदार, जो समाज को

[207] आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मैं बड़ी होने लगी, पृ0 37

धार्मिक शिक्षा देने का दावा करते, पाखण्ड की आड़ में वे भी न जाने कितनी लड़कियों का मान भंग कर चुके होते थे। स्वयं लेखिका कई बार इसका शिकार हो चुकी थी। पुरुष के इस रवैये ने उनके भीतर आज इतना साहस एवं आत्म विश्वास भर दिया कि वे सामाजिक स्तर पर इन सारी घटनाओं को लिखने का साहस ही नहीं कर पाई, अपितु अपनी बेबाक लेखनी से विरोध भी प्रकट करती रहती हैं। इसी संदर्भ में वह लिखती हैं कि "मेरे प्रतिवाद का यही तरीका रहा है पहले झेल लेना, बाद में झुंझलाना, पछताना और आगे प्रतिरोध करना, आवृत्ति नहीं होने देना। सम्भवतः हर लड़की का यही तरीका है। यह तो सब समझ आ रहा है कि वह सब क्या था, जिसने बचपन में ही मेरे भीतर भय, असुरक्षा और भीरुता के बीज बोने की कोशिश की। ये अप्रिय सस्ंकार मुझे नौकरों ने, सगे सबंधियों या घर आए मेहमानों ने दिए, जिनकी स्मृति मेरे विद्रोही तेवरों से उभारने में सहायक तो जरुर हुई.....पर मेरे अवचेतन में बैठ गया। मेरी शुचिता बार-बार टूटी.....इस टूटन का अपराध बोध मुझे हीनता से भरता रहा। बहुत बाद में जाकर मैं इससे उबर पाई"[208]। सामन्ती समाज में यौन-संबंध, बलात्कार, स्त्री शोषण, अन्याय, अत्याचार कोई नई बात नहीं शिकार होती पीड़िता को ही चुपचाप सब कुछ सहते रहने की नसीहतें दी जाती रही हैं। स्त्री जाति के लिए यही वेदवाक्य "किसी से कहियो मत" की हिदायत अपराधी के तेवर बुलन्द करते रहते

[208] आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, अतीत के सांप, पृ0 77-78

हैं। रमणिका गुप्ता समाज की स्त्रियों को बताना चाहती हैं कि जब तक हम स्वयं इनका विरोध नहीं करेंगे अपराधियों के हौंसले बुलन्द होते रहेंगे। सच को स्वीकारना ही सबसे बड़ा साहस है, हम जब तक सच कहने या सच का साथ देने से दूर भागेंगे मृत्यु के उतने ही निकट पहुँचेगे और अपराधी दुनिया को हमारा सच बता देने का भय दिखाकर हमें ब्लैकमेल करता रहेगा। जरुरी है सच कहने की हिम्मत और कुव्वत रखना। सच सुनने में जितना कटु होता है उतना ही बड़ा होता है। जितना बड़ा सच होता उतनी लम्बी, प्रभावशाली उसकी गूंज होती है। बेटे को जन्म देकर रमणिका गुप्ता माँ बनकर जहाँ स्त्री सम्पन्नता को प्राप्त करती हैं, वहीं दूसरी ओर घर की जिम्मेदारी के बोझ तले घुटन महसूस करती हैं उन्हें लगता है कि जिन्दगी रुक-सी गयी है। पति के खूंटे से बंधकर रहना उन्हें स्वीकार्य नहीं। रमणिका गुप्ता जीविकोपार्जन हेतु रोजगार की तलाश करती हैं। स्वावलम्बी बनने की उनकी जिद्द उनके जीवन में कई भटकावों, उलझनों को जन्म देती रहती है| आर्थिक, शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार होते हुए भी कभी हार स्वीकार नहीं करती हैं। पति के साथ भारत के विभिन्न शहरों में भ्रमण करते हुए धनबाद पहुँच जाती हैं। मद्रास में रहते हुए एक पुत्री को जन्म देती हैं। बच्चा न होने का आपरेशन स्वेच्छा से करवाती हैं ताकि मुक्त होकर नृत्य एवं प्रेम का सुख प्राप्त कर सके। आपहुदरी रमणिका के प्रेम प्रसंग की कहानी है। उनके राजनीतिक जीवन का चित्रण 'हादसे' आत्मकथा में विस्तार से अभिव्यक्त है। 'आपहुदरी' आत्मकथा में उनके राजनीतिक जीवन की कुछ विशेष घटनाओं को ही लिखा गया

है। इनका उल्लेख इस प्रकार है सन् 1960 में रमणिका गुप्ता स्वतंत्रता का अहसास एवं नयी उड़ान के सपने लिए कोयले की नगरी, मजदूरों और मालिकों की नगरी धनबाद पहुँचती हैं। इसी शहर में उनके जीवन में संघर्षों एवं रचनात्मकता के दौर की शुरुआत होती है। धनबाद में कांग्रेस पार्टी के कार्यकर्ता के रूप में कई सामाजिक और राजनीतिक कार्य करती है | मजदूरों के हक के लिए आन्दोलन चलाती हैं। स्वतंत्र मजदूर नेता के रूप में अपनी पहचान बनाती हुए सन् 1968 में मांडू से चुनाव लड़ती है और अपनी यूनियन बना लेती हैं| सन् 1972 में कांग्रेस की तरफ से बिहार विधान परिषद् की सदस्य बना दी जाती है। दो गुटों में बंट चुके दलों के बीच में एक स्वतंत्र नेता के रूप में जहाँ पार्टी में पहचान बनाती हैं, वहीं दूसरी ओर 'राष्ट्रीय कोलियरी मजदूर संघ' की उपाध्यक्ष का पद भी प्राप्त कर लेती हैं।

राजनीति में सक्रिय रहते हुए कई आन्दोलन चलाती हैं। समाज सेवा की शुरुआत गैराज में महिलाओं के लिए निःशुल्क सिलाई केन्द्र खोलकर करती हैं । भारत एवं चीन युद्ध के दौरान 'सेल्फ डिफेंस' की ट्रेनिंग लेती हैं। बंदूक चलाने के साथ-साथ जीप चलाना सीखती हैं। राजनीति में प्रवेश करके लेखिका को महसूस होता है कि एक महिला के लिए राजनीति में कदम रखना कोई आसान कार्य नहीं।

यहाँ पर भी रमणिका का कदम-कदम पर शोषण होता है। महिलाओं को लेकर राजनैतिक सौदेबाजी नेताओं द्वारा उन्हें तंग करना, ब्लेकमेल करना राजनेताओं के

लिए आम बातें हैं, इसके विरुद्ध रमणिका गुप्ता अपनी आवाज उठाती हैं और कांग्रेस से त्यागपत्र दे देती है और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की सदस्य बन जाती हैं। राजनीति के दंगल में यह उनकी दूसरी पारी होती है । सन् 1967 में कच्छ यात्रा भारत सरकार के विरोध में करती हैं। भारत सरकार ने 'कंजरकोट' और 'छाड़वेट' का इलाका पाकिस्तान को देने का निर्णय ले लिया था। पटना से कच्छ तक की यात्रा करते हुए कई बार जेल जाती है। पुलिस एवं प्रशासन की यातनाएँ झेलती रहती हैं। कच्छ जन-परिषद का गठन करती हैं एवं मुकदमा भी जीतती हैं। इस आत्मकथा के अध्ययन के उपरान्त कहा जा सकता है कि रमणिका गुप्ता एक गृहिणी, कवयित्री, समाजसेविका के तौर पर ही नहीं अपितु महिला राजनेता के रूप में भी अपनी स्वच्छंद पहचान बनाती हैं। देश के महत्त्वपूर्ण आयोजनों में उनकी भागीदारी एवं उपस्थिति सफल राजनीतिक वर्चस्व को प्रमाणित करती हैं। सामाजिक मुद्दा हो या राजनीतिक रमणिका गुप्ता ने अपना पक्ष बिल्कुल स्पष्ट होकर रखा है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति पुरूष की सोच आज भी घिसी-पिटी है। पुरूष लेखक को यह भय है कि यदि दोयम दर्जे की स्त्रियों को यदि कुछ कहने लिखने का मौका दिया जाएगा तो यह हमारी रहस्यमयी बातों का खुलासा समाज में कर देंगी, जिससे पुरूष समाज की छवि बिगडेगी। पुरूष लेखकों की इस सोच ने भी स्त्री लेखन पर कुठाराघात किया है, जिस कारण कुछ लेखिकाओं की आत्मकथाओं को हिन्दी साहित्य में स्थान नहीं मिला। इस समाज में महिलाओं को ही अपने आप से ही लड़ती रहती है। इस पुरूष समाज के प्रति वह महिलाएं जागरूक होकर विरोध क्यों नहीं करती। अब इस समाज में पुरूष और स्त्री की भी समानता होनी चाहिए। पर इस समाज में पुरूष से दीन ही मानी जाती रही है महिला। इसलिए अब महिलाएं अपनी आत्मकथाओं के द्वारा अपने भावों को समाज में प्रकट करती है। इस पुरूष समाज की सही तस्वीर पेश करती है। इसी कारण आज महिलाएं भी अपने अधिकारों और जरूरतों के प्रति सचेत रही है। इस तरह पुरूष लेखकों के प्रभुत्व के कारण उनका लेखन अधिक है अपेक्षाकृत महिला के। साहित्यिक क्षेत्र में पुरूष के दोगलेपन की नीति पर उन महिलाओं ने लिखा है लिखना एक आम बात है इसमें स्त्री पुरूष दोनों समान है। इनको स्त्री पुरूष के खांचों में बांटना भी रूढ़िबद्धता ही नजर आती है। जिस तरह एक पुरूष लिख सकता है। उसी तरह एक महिला भी अपने विचारों और चतेना को अभिव्यक्त कर सकती है। स्त्री

लेखक द्वारा लिखा गया लेखन उसके विशिष्ट स्वानुभावों और आत्मचेतना की अभिव्यक्ति है।

पुरूष प्रधान समाज में हर नारी का शोषण होता है। क्योंकि यह समाज ही पुरूष प्रधान समाज है। इस पुरूष प्रधान समाज में तो नारी को हीन की दृष्टि से ही देखा गया है। इसलिए नारी का समाज तो इस दुविधा में है नहीं कही। कहने के सब अधिकार है करने के लिए वह केवल पुरूष पर ही आश्रित रहे। पति चाहे तो परायी स्त्री से प्रेम करें किसी पराई लड़की को घर पर लाकर अपनी मनमानी करें। पत्नी को अपनी विचारों को स्पष्ट करने तक की आजादी नहीं है। ऐसा समाज क्यों है। यह इस पुरूष प्रधान समाज में स्त्री के साथ ही कैसे हो रहा होता है। इतना बड़ा अधिक शोषण। क्या कारण है कि नारी अपने अधिकारों तक के लिए सीमित कर दी गई है।